विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
शिवना प्रकाशन
वर्ष : 7, अंक : 25
अप्रैल-जून 2022
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

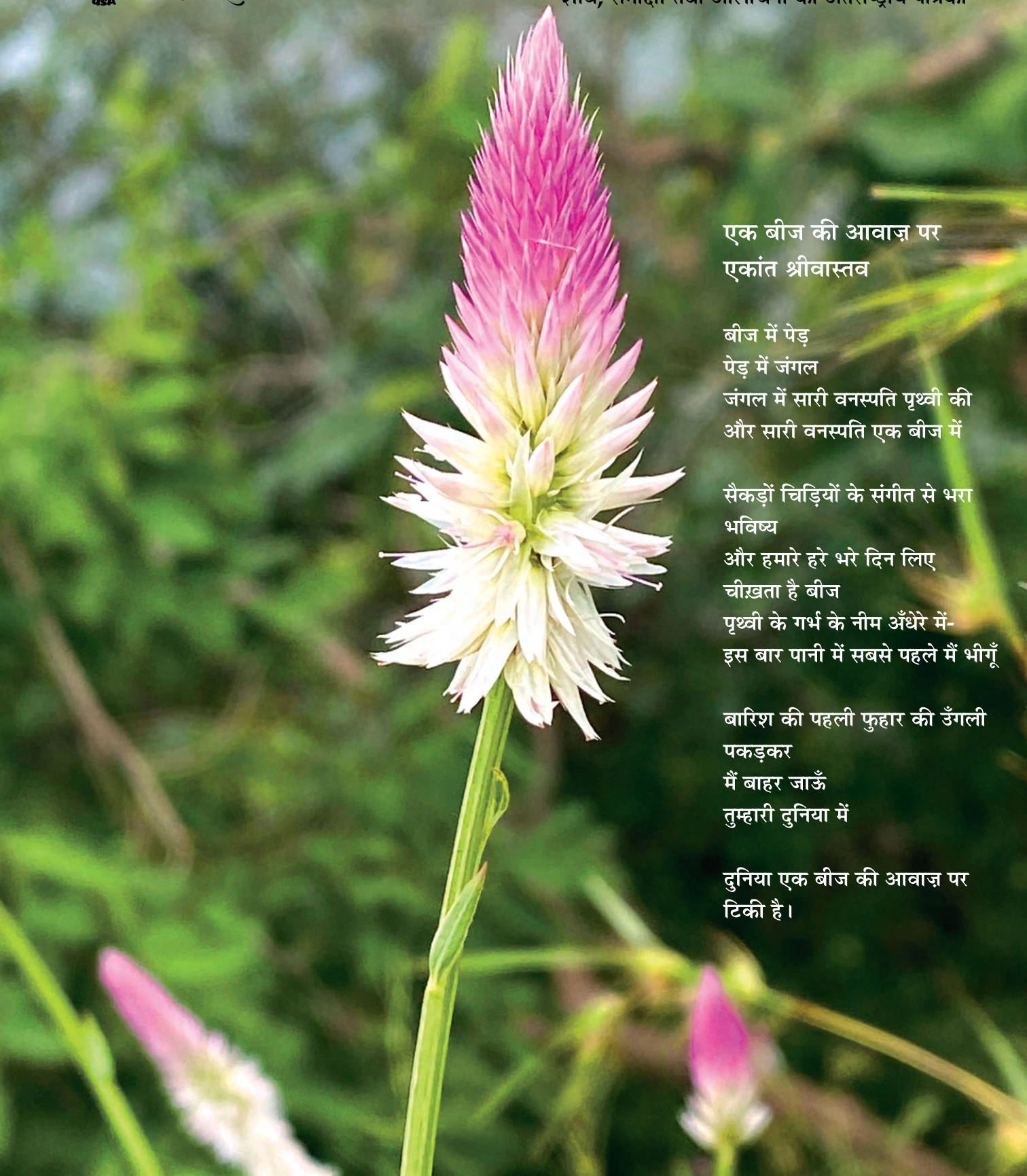

एक बीज की आवाज़ पर
एकांत श्रीवास्तव

बीज में पेड़
पेड़ में जंगल
जंगल में सारी वनस्पति पृथ्वी की
और सारी वनस्पति एक बीज में

सैकड़ों चिड़ियों के संगीत से भरा
भविष्य
और हमारे हरे भरे दिन लिए
चीख़ता है बीज
पृथ्वी के गर्भ के नीम अँधेरे में-
इस बार पानी में सबसे पहले मैं भीगूँ

बारिश की पहली फुहार की उँगली
पकड़कर
मैं बाहर जाऊँ
तुम्हारी दुनिया में

दुनिया एक बीज की आवाज़ पर
टिकी है।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

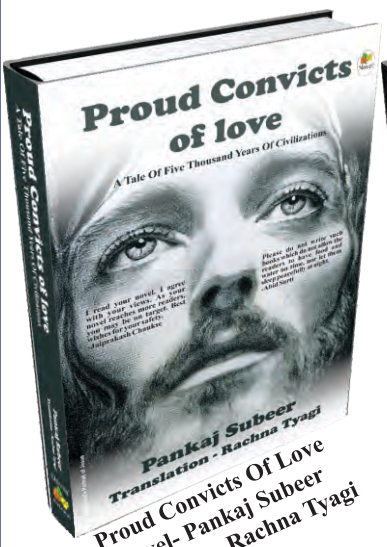

Proud Convicts Of Love
Novel- Pankaj Subeer
Translation- Rachna Tyagi

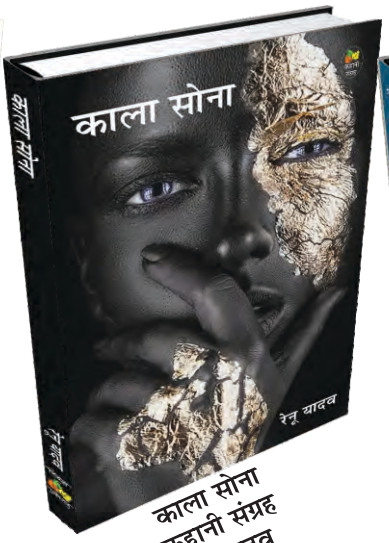

काला सोना
कहानी संग्रह
रेनू यादव

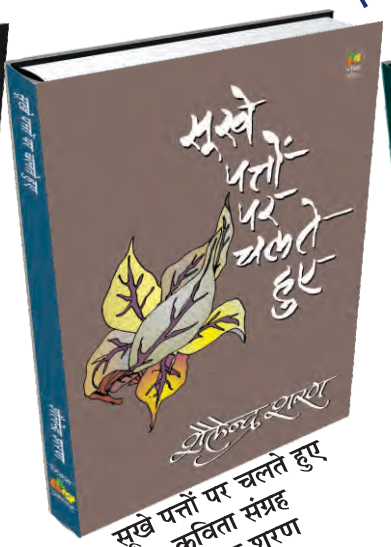

सूखे पत्तों पर चलते हुए
कविता संग्रह
शैलेन्द्र शरण

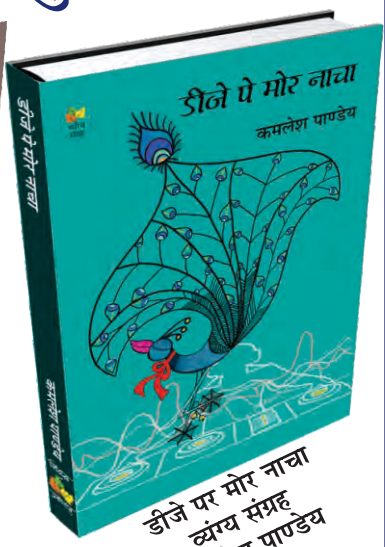

डीजे पर मोर नाचा
व्यंग्य संग्रह
कमलेश पाण्डेय

विमर्श- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
आलोचना
सुधा ओम ढींगरा

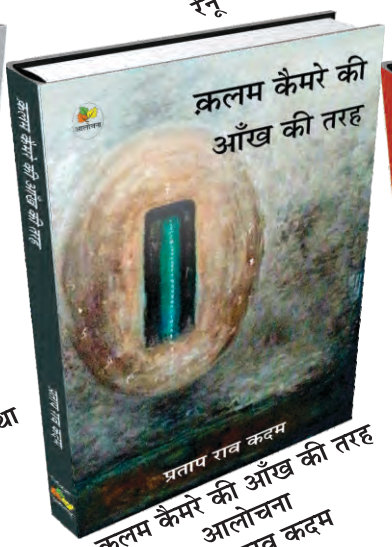

क़लम कैमरे की आँख की तरह
आलोचना
प्रताव राव कदम

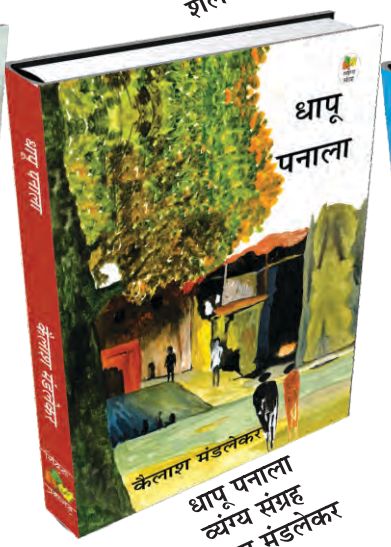

धापू पनाला
व्यंग्य संग्रह
कैलाश मंडलेकर

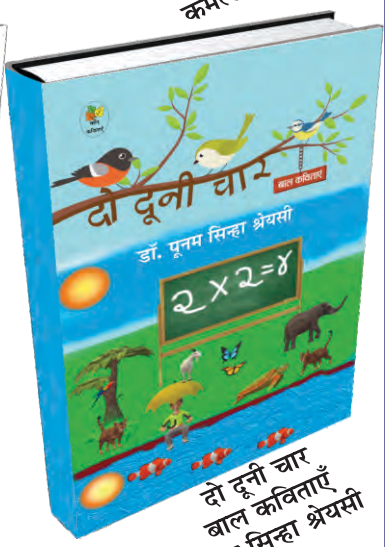

दो दूनी चार
बाल कविताएँ
पूनम सिन्हा श्रेयसी

रॉकिंग चेयर
कहानी संग्रह
अरुणा सब्बरवाल

तलाश ख़त्म हुई
उपन्यास
प्रमोद देवगिरिकर

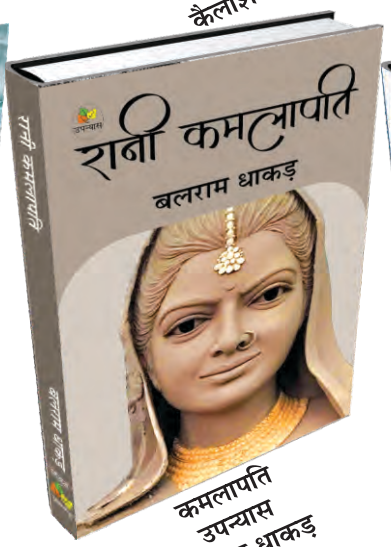

कमलापति
उपन्यास
बलराम धाकड़

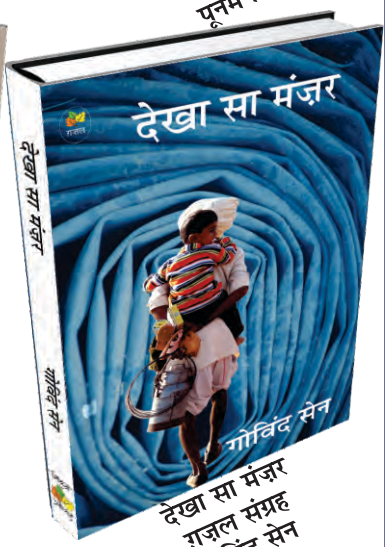

देखा सा मंज़र
ग़ज़ल संग्रह
गोविंद सेन

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह, आकाश माथुर
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 7, अंक : 25, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

आवरण कविता
एकांत श्रीवास्तव

इस अंक में

आवरण कविता / एकांत श्रीवास्तव
आवरण चित्र / पंकज सुबीर
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

पुस्तक समीक्षा

जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद
दिनेश कुमार / विजय बहादुर सिंह / 5
रज्जो मिस्त्री
दीपक गिरकर / प्रज्ञा / 8
कुछ नीति कुछ राजनीति
कैलाश मण्डलेकर / भवानी प्रसाद मिश्र / 12
कमर मेवाड़ी: रचना-संचयन
प्रो. मलय पानेरी / संपादक : माधव नागदा / 14
अरविंद की चुनिंदा कहानियाँ
डॉ. रमाकांत शर्मा / डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' / 16
नई शुरुआत
डॉ. डी एम मिश्र / कौशल किशोर / 18
साहित्यिक परंपरा एवं आस्वाद
शैलेन्द्र शरण / गोविन्द गुंजन / 20
खिड़कियों से झाँकती आँखें
बी. एल. आच्छा / सुधा ओम ढींगरा / 23
सूखे पत्तों पर चलते हुए
अरुण सातले / शैलेन्द्र शरण / 25
पूछ रहा है यक्ष
गोविंद सेन / हरेराम समीप / 27
लिखती हूँ ज़िंदगी तुझे
नीरज नीर / डॉ. माया प्रसाद / 29
तितली है ख़ामोश
डॉ. रामनिवास 'मानव' / सत्यवान सौरभ / 45
लिफाफे में कविता
दीपक गिरकर / अरविंद तिवारी / 46
द सिंधिया लीगेसी
ब्रजेश राजपूत / अभिलाष खांडेकर / 48
कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी
कुमार सुशान्त / गीताश्री / 50
उस तरह की औरतें
संजीव त्रिपाठी / डॉ. रंजना जायसवाल / 51
आसमाँ और भी थे
दीपक गिरकर / गजेन्द्र सिंह वर्धमान / 52
ज़रा-सी बात पर
डॉ. रोहिताश्व अस्थाना / अशोक अंजुम / 53
रॉकी अहमद सिंह
रीता कौशल / संजीव जायसवाल 'संजय' / 54
द बैटल अगेंस्ट कोविड डायरी ऑफ ए ब्यूरोक्रेट
ब्रजेश राजपूत / तरुण पिथोड़े / 55
जेब में भर कर सपने सारे
निधि प्रितेश जैन / ज्योति जैन / 56
उत्तर प्रदेश चुनाव २०२२
ब्रजेश राजपूत / प्रदीप श्रीवास्तव / 57

केंद्र में पुस्तक

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
रेखा भाटिया, अशोक प्रियदर्शी, प्रमोद त्रिवेदी
सुधा ओम ढींगरा / 31
हमेशा देर कर देता हूँ मैं
डा. रमाकांत शर्मा, सूर्यकांत नागर, डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा
पंकज सुबीर / 38

नई पुस्तक

डीजे पे मोर नाचा
कमलेश पाण्डेय / 13
देखा सा मंज़र
गोविंद सेन / 22
क़लम कैमरे की आँख की तरह
प्रतावराव कदम / 28
रानी कमलापति
बलराम धाकड़ / 30
प्राउड कन्विक्ट्स ऑफ़ लव
पंकज सुबीर / रचना त्यागी / 37
रॉकिंग चेयर
अरुणा सब्बरवाल / 47
विमर्श- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
सुधा ओम ढींगरा / 49
धापू पनाला
कैलाश मण्डलेकर / 61
काला सोना
रेनू यादव / 66
तलाश ख़त्म हुई
प्रमोद देवगिरिकर / 70

शोध आलेख

मधु कांकरिया के उपन्यासों एवं कहानियों में आदिवासी जीवन
मुनेन्द्र भाटी / 58
मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में आस्था और विचार दर्शन
डॉ. मोहम्मद फ़ीरोज़ खान / 62
टॉरनेडो में किशोर बालिका का मनोविश्लेषण
रेनू यादव / 67
दिलीप तेतरवे के व्यंग्य आलेखों में आम और ख़ास आदमी
डॉ. नूरजहाँ परवीन / 69
प्रवासी हिन्दी कहानी और अप्रवासी मन की उलझन
डॉ. रौबी फौजदार / 71

संपादकीय

एकरसता और दोहराव से अलग एक नए प्रकार का गद्य

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

कहानी, उपन्यास यह दो विधाएँ ऐसी हैं, जो हमेशा से सारी विधाओं से आगे रहती हैं। लेकिन पिछले कुछ समय में पाठकों का रुझान दूसरी विधाओं की तरफ़ इन दोनों विधाओं की तुलना में ज़्यादा हुआ है। एक प्रकाशक के रूप में कह रहा हूँ कि कथेतर गद्य की पुस्तकों के प्रति पाठकों का आकर्षण कहानी या उपन्यास की तुलना में अधिक हो गया है। एक समय यह कहा जाता था कि सारी विधाओं का राजा उपन्यास होता है लेकिन अब यह स्थिति नहीं है, अब ऐसा हो रहा है कि कथेतर गद्य की विधाएँ पाठकों के बीच उपन्यास की तुलना में अधिक पसंद की जा रही हैं। ऐसा क्यों हो रहा है, यह तो पाठकों और लेखकों को ही पता होगा। इस दौर में कई उपन्यास सामने आ रहे हैं। अधिकांश बड़े पुरस्कार तथा सम्मान भी उपन्यासों के ही हिस्से में जा रहे हैं मगर फिर भी पाठक के मन में कुछ और ही है। कथेतर गद्य की विधाओं की लोकप्रिसता आज उपन्यासों से अधिक है। यहाँ लोकप्रियता शब्द का मतलब यह नहीं है यहाँ गंभीर तथा लोकप्रिय साहित्य जैसी बहस को फिर से जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है। असल में यहाँ जो लोकप्रियता शब्द है वह साहित्य के गंभीर पाठकों के बीच लोकप्रिय होने के संदर्भ में है। वे पाठक जो पूर्व में पारंपरिक रूप से कहानी तथा उपन्यासों की तलाश करते थे, वे अब कथेतर गद्य की विधाओं की पुस्तक तलाश करते देखे जाते हैं। यदि इसका दूसरा पक्ष देखा जाए, तो शायद यह भी हो सकता है कि पाठक के पास अब पहले की तरह फ़ुरसत का समय और धैर्य दोनों नहीं हैं, इसीलिए वह उपन्यास से दूर हो रहा है। उपन्यास पढ़ने के लिए समय और धैर्य दोनों की आवश्यकता होती है। जो स्थिति उपन्यास की है, वही कहानियों की भी है। कहानियों के पाठक भी सिमट रहे हैं। इसका कारण शायद यह हो कि कहानियों में विषय घूम-फिर कर दोहराव का शिकार हो रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि विषयों का अकाल पड़ गया है। और फिर यह भी हो रहा है कि घटनाओं को ही कहानी कह कर प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठक इतना तो समझता है कि घटना, सूचना, समाचार तथा कहानी में क्या अंतर होता है। ऐसे में कहानी के पाठक भी घटते जा रहे हैं। हाँ यह ज़रूर हुआ है कि इस समय सबसे ज़्यादा कहानी संग्रह ही प्रकाशित होकर सामने आ रहे हैं। यह भी कह सकते हैं कि कहानी संग्रहों की बाढ़ सी आई हुई है। शिवना प्रकाशन के पास भी सबसे ज़्यादा पांडुलिपियाँ कहानी संग्रहों की ही आ रही हैं। इतनी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, किन्तु इसके बाद भी कहानियाँ पाठकों के दिमाग़ में उस प्रकार अपना स्थान सुरक्षित नहीं कर रही हैं, जिस प्रकार पूर्व में कई सारी कालजयी कहानियाँ बरसों बीत जाने के बाद भी बनाए हुए हैं। सीधी और सपाट सी कहानियाँ इन दिनों लिखी जा रही हैं, जो पाठक के अंदर किसी प्रकार की बेचैनी पैदा किए हुए ही समाप्त हो जाती हैं। ऐसे में हम कैसे उम्मीद रखें कि यह कहानियाँ पाठकों को बरसों तक याद रह पाएँगी। तुलनात्मक रूप से देखें तो कथेतर गद्य की किताबों में यही बेहतर है, कि वह एकरसता और दोहराव से अलग एक नए प्रकार का गद्य लेकर आ रही हैं। गद्य, जो रोचक और पठनीय तो है ही साथ में जानकारियों और सूचनाओं से भी भरा हुआ है। इन दिनों कथेतर गद्य की यात्रा संस्मरण, डायरी, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, जैसी विधाएँ फिर से पाठक को अपनी तरफ़ खींच रही हैं। साथ ही यह भी हुआ है रेखाचित्र जैसी बिसरा दी गई विधाएँ भी फिर से सामने आ रही हैं। कथेतर गद्य का इस प्रकार लोकप्रिय होना इस बात का संकेत है कि पाठक कहीं और जाकर अपनी मानसिक क्षुधा शांत कर रहा है। वह क्षुधा जो वही पूर्व में कहानियों तथा उपन्यासों से शांत करता रहा है। यह कथाकारों के लिए भी एक प्रकार का ख़तरे का संकेत है। संकेत यह कि कहीं न कहीं, कुछ न कुछ ग़लत हो रहा है। ऐसा कुछ हो रहा है, जिस पर अभी से सोचने की ज़रूरत है। कहानी की लोकप्रियता में जो गिरावट आ रही है वह यूँ ही तो नहीं है..। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

(आलोचना)

जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद

समीक्षक : दिनेश कुमार

लेखक : विजय बहादुर सिंह

प्रकाशक : साहित्य भंडार इलाहाबाद

दिनेश कुमार
अस्सिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज-211002, उप्र
मोबाइल- 9717575908

बहुत कम पुस्तकें ऐसी होती हैं जो प्रकाशन के साथ ही चर्चा के केंद्र में आ जाती हैं। वरिष्ठ आलोचक विजय बहादुर सिंह की नवीनतम पुस्तक 'जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद' एक ऐसी ही पुस्तक है। यह पुस्तक प्रसाद को बिल्कुल नए ढंग से हमारे सामने लाती है। विश्वविद्यालयों में प्रत्येक स्तर पर और लगभग सभी महत्त्वपूर्ण विधाओं में अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाने के बावजूद हिन्दी आलोचना में उन्हें वह महत्ता और प्रतिष्ठा नहीं मिली जिसके वे हकदार थे। निराला को रामविलास शर्मा तो मिले ही, पूरी की पूरी प्रगतिशील आलोचना भी उनके साथ डटकर खड़ी रही। प्रसाद को रामविलास जी जैसा कोई ना मिला। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास ज़रूर किया लेकिन वह ऐसा नहीं था जिससे उस युग के केंद्रीय साहित्यक व्यक्तित्व के तौर पर प्रसाद प्रतिष्ठित हो सके। मुक्तिबोध के लिए प्रसाद जीवन भर चुनौती बने रहे। वे अपने वैचारिक पूर्वाग्रहों के कारण प्रसाद की विश्वदृष्टि को समझने में बुरी तरह असफल रहे। 'कामायनी एक पुनर्विचार' में उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को कामायनी पर इस तरह आरोपित कर दिया है की कृति की मूल आत्मा ही नष्ट हो गई है। बावजूद इसके यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मुक्तिबोध व्याख्या, विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए छायावादियों में से प्रसाद को चुनते हैं और निराला पर मौन साध लेते हैं। मुक्तिबोध जैसे दृष्टि संपन्न कवि-आलोचक का प्रसाद पर लिखना और निराला पर चुप्पी साध लेना अनायास है या सायास, यह बहसतलब हो सकता है किंतु, इतना तो निश्चित है कि प्रसाद से असहमत होते हुए भी वे यह मानते हैं कि प्रसाद के पास एक मुकम्मल विश्वदृष्टि है। मुक्तिबोध आलोचना को 'सभ्यता समीक्षा' मानते हैं और इस सभ्यता समीक्षा के लिए उन्हें सर्वाधिक अनुकूल कृति 'कामायनी' ही नज़र आती है। तात्पर्य यह है कि अपनी नकारात्मक स्थापनाओं के बावजूद उस युग के केंद्रीय रचनाकार के रूप में मुक्तिबोध प्रसाद को ही स्वीकार करते हैं किसी अन्य को नहीं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी और मुक्तिबोध के बाद जयशंकर प्रसाद को संपूर्णता में समझने का प्रयास विजय बहादुर सिंह ने अपनी पुस्तक 'जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर' प्रसाद में किया है। उनका मानना है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हिन्दी साहित्य से किसी एक रचनाकार का चयन करना हो, जो औपनिवेशिक विचारधारा और पश्चिमी जीवन-दृष्टि का भारतीय प्रतिपक्ष रचते हुए भी गैरसंप्रदायिक और उदार है, तो वह रचनाकार सिर्फ जयशंकर प्रसाद हो सकते हैं। वे अतीत में जाकर भविष्योन्मुखी चेतना के बीज खोज कर लाते हैं। शायद इसीलिए उनकी सांस्कृतिक दृष्टि अतीतोन्मुखी ना होकर संस्कृति के सांप्रदायीकरण का सशक्त प्रतिरोध है। प्रसाद की रचना-दृष्टि को एक संघर्षरत जाति के संपूर्ण जीवन-दृष्टि की पुनर्रचना मानते हुए विजय बहादुर सिंह न सिर्फ उसे तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में मूल्यवान बताते हैं बल्कि इक्कीसवीं सदी के भारत के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक और संदर्भवान मानते हैं। प्रसाद संबंधी मूल्यांकन में यह आलोचना-दृष्टि निश्चय ही क्रांतिकारी प्रस्थान बिंदु है।

प्रसाद पर बात करते हुए अक्सर प्रेमचंद को सामने लाया जाता है और कहा जाता है कि प्रेमचंद वर्तमान समस्याओं पर लिखते हैं और प्रसाद इनसे से मुँह मोड़ लेते हैं। इसी आधार पर कुछ उत्साही लोग प्रेमचंद को प्रगतिशील और प्रसाद को अतीतजीवी घोषित करके प्रेमचंद बनाम प्रसाद की निरर्थक बहस करते रहते हैं। दरअसल, यह तुलना ही असंगत है, क्योंकि

प्रेमचंद का क्षेत्र अतीत है ही नहीं। यह प्रेमचंद और प्रसाद का अलग-अलग वैशिष्ट्य है। उनके भारत-स्वप्न में कोई बड़ी भिन्नता नहीं है। प्रेमचंद भी इस बात को बहुत गहराई से महसूस कर रहे थे कि 'सांप्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है' और वह 'संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है'। प्रेमचंद की इस बात को समझते हुए प्रसाद अधिक बुनियादी महत्त्व का काम यह करते हैं कि वे संस्कृति की संप्रदायिक व्याख्या की संभावना को ही समाप्त कर देते हैं। वे अतीत का उत्खनन करके एक ऐसी भारतीय संस्कृति की खोज करते हैं जहाँ किसी भी तरह की सांप्रदायिकता और मानसिक संकीर्णता के लिए कोई जगह ही नहीं है।

दरअसल, सांप्रदायिकता आधुनिक परिघटना ज़रूर है पर इसका रण-क्षेत्र अतीत ही रहता है। संस्कृति भी मुख्यत: अतीत से ही परिभाषित होती है। इसलिए, सांप्रदायिकता से लड़ने के लिए, और उसके जड़ पर प्रहार करने के लिए अतीत में जाना अपरिहार्य है। अतीत से भागकर सांप्रदायिकता से कोई बुनियादी लड़ाई लड़ी ही नहीं जा सकती है। सांप्रदायिकता अतीत की ग़लत व्याख्या करके ही अपने लिए खाद-पानी जुटाती है। इसलिए, यह ग़लत प्रश्न है कि कोई रचनाकार अतीत में क्यों जा रहा है बल्कि प्रश्न यह होना चाहिए कि वह अतीत में जाकर क्या ला रहा है? अतीत की उसकी खोज सांप्रदायिकता की जड़ों को मज़बूत करने वाली है या उसे उखाड़ने वाली ? निश्चय ही प्रसाद अतीत में जाकर एक उदार सहिष्णु और धर्मनिरपेक्ष भारत की ज़मीन तैयार करते हैं, जो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का आदर्श था। विजय बहादुर सिंह बिल्कुल सही रेखांकित करते हैं कि "अतीत को पुनर्जीवित करते हुए वे न तो अंध अतीतवादी हैं, न उसकी जानी-पहचानी विकृतियों के समर्थक ही। वे उन्हीं पक्षों को उभारने में रुचि प्रदर्शित करते हैं जो बीसवीं सदी के भारत के लिए संजीवनी का काम कर सके।" कहने की आवश्यकता नहीं है कि कुछ लोग अतीत से संजीवनी की जगह विष भी लाते हैं।

रचना में अतीत को विषय-वस्तु बनाने वाले रचनाकारों के यहाँ जैसे यह देखना आवश्यक है कि वे अतीत से वर्तमान के लिए संजीवनी या विष क्या लेकर आते हैं, वैसे ही यह भी देखना ज़रूरी है कि उन रचनाओं में राष्ट्रवाद व राष्ट्रीयता का स्वरूप कैसा है ? हालाँकि यह दोनों प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े हुए भी हैं। विजय बहादुर सिंह इस संदर्भ में द्विवेदी युग के महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक लोकप्रिय कवि मैथिलीशरण गुप्त तथा राष्ट्रवादी काव्य-धारा के कवियों से प्रसाद की तुलना करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "प्रसाद अपने समय के उन महान् राष्ट्रीय चारणों से बिल्कुल अलग हैं, जो राष्ट्रीय आंदोलन के साथ अपनी काव्य-दृष्टि को संबंद्ध कर तात्कालिक उफानों की सतही अभिव्यक्ति के जरिए भारतीय जनमानस की वाहवाही लूटते रहे हैं।" यह बात सही है कि औपनिवेशिकता से प्रसाद की लड़ाई अधिक बुनियादी और गहरी है जबकि राष्ट्रीय काव्य-धारा का सबसे बड़ा मूल्य तात्कालिक भावों-उद्वेगों की अभिव्यक्ति में है। वैसे भी श्रेष्ठ साहित्य राष्ट्र की तात्कालिक ज़रूरतों की पूर्ति के लिए नहीं होता वह तो राष्ट्र की दीर्घकालिक आशाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। विजय बहादुर सिंह सही लक्षित करते हैं कि मैथिलीशरण गुप्त की उर्मिला या यशोधरा से श्रद्धा और इड़ा की तुलना करने से तथा 'भारत-भारती' से 'चंद्रगुप्त' या 'स्कंदगुप्त' की राष्ट्रीयता की तुलना करने से एक ही समय की दो काव्य-दृष्टियों में अतीत और राष्ट्रीयता के प्रश्न पर स्पष्ट अंतर दिखाई दे देगा। इसी अंतर के कारण गुप्त जी की कृतियों का आज सिर्फ ऐतिहासिक महत्त्व मात्र रह गया है जबकि प्रसाद की कृतियाँ काल का अतिक्रमण करते हुए आज भी उतनी ही प्रासंगिक और संदर्भवान बनी हुई हैं।

वैसे अतीत, संस्कृति और राष्ट्रीयता के प्रश्नों पर मैथिलीशरण गुप्त से प्रसाद की तुलना की जगह दूसरे छायावादी कवि निराला से तुलना अधिक सार्थक है। विजय बहादुर सिंह इस तुलना से बचते हुए दिखाई देते हैं पर, कहीं-कहीं संकेत ज़रूर कर देते हैं। निराला के सांप्रदायिक इतिहास-बोध की तुलना में प्रसाद का इतिहास-बोध कितना सुसंगत और प्रगतिशील है इसे 'तुलसीदास' और प्रसाद की कविता 'महाराणा का महत्त्व' के विश्लेषण से जाना जा सकता है। जहाँ तुलसीदास का नायकत्व इस्लाम के विरुद्ध है, वहीं महाराणा प्रताप के महत्त्व को स्थापित करते हुए भी प्रसाद कहीं भी अकबर विरोधी नहीं होते हैं। महाराणा, रहीम खानखाना और अकबर तीनों का जिस उदात्तता के साथ चित्रण इस कविता में है, वह प्रसाद ही कर सकते थे। यह अकारण नहीं है कि सांप्रदायिक सोच वाले लोग निराला का तो एक हद तक इस्तेमाल कर लेते हैं लेकिन प्रसाद का बिल्कुल नहीं कर पाते हैं। विजय बहादुर जी प्रसाद और निराला के इतिहास बोध पर भी समग्रता से विचार कर सके तो और बेहतर होगा।

विजय बहादुर सिंह प्रसाद के उन प्रगतिशील पक्षों को सामने लाते हैं जो वर्तमान समय के लिए भी मूल्यवान हैं। इस लिहाज से वे प्रसाद का आधुनिक भाष्य प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी का पाठक प्रसाद के चिंतन और दर्शन को एक ख़ास 'फ्रेमवर्क' और परिपाटी से देखने को अभ्यस्त रहा है। इसी का परिणाम है कि प्रसाद की पहचान एक ऐसे दार्शनिक रचनाकार की बनी जिसकी मूल प्रवृत्ति यथार्थ से पलायन है। विजय बहादुर सिंह इस मान्यता का ज़ोरदार खंडन करते हैं। उनका मानना है कि प्रसाद का चिंतन मूलत: औपनिषदिक है और वे पुराणों के विरोधी हैं। वे लिखते हैं- "प्रसाद पुराणवादियों की तरह किसी गणेश, सरस्वती या काली-दुर्गा की वरदायी शक्ति का हवाला नहीं देते। वे नहीं मानते कि मनुष्य के बाहर कोई अन्य ऐसी शक्ति है जो किसी पूजा अर्चना से प्रीत होकर किसी साधक कवि या लेखक पर एक दिन बरस पड़ती है। तथापि, वे प्रकृति से बड़ी सत्ता मनुष्य को भी नहीं मानते। यही प्रसाद का यथार्थवाद है, आधुनिकतावाद भी, जो भारत की अपनी विश्व दृष्टि रही है।" इस प्रकरण में विजय बहादुर सिंह निराला की चर्चा करते हैं जिनके रचना संसार में पौराणिक देवी-देवता भरे पड़े हैं। निराला के प्रार्थना गीतों और यहाँ तक कि

'राम की शक्ति पूजा' में भी दैवीय शक्तियों के प्रति शरणागत हो जाने का भाव है। इससे दोनों कवियों में एक बहुत बड़ा फर्क आ जाता है जिसे रेखांकित करते हुए विजय बहादुर सिंह लिखते हैं, ''निराला आत्मा से बाहर की किसी अन्य दैवी शक्तियों के प्रति भी आस्थावान हैं, जबकि प्रसाद आत्मा की ही शक्ति को एकमात्र शक्ति मानते हैं।'' प्रसाद के चिंतन में मनुष्येत्तर की नहीं मनुष्य का केंद्रीय महत्त्व है। इसीलिए, वे भक्तिवादी जीवन-दृष्टि से भी सहमत नहीं है। यह जीवन-दृष्टि मनुष्य से अधिक किसी उद्धारक देवी- देवता को तरजीह देती है। वहाँ मनुष्य की सत्ता नगण्य हो जाती है। प्रसाद स्पष्ट लिखते हैं कि ''जिन-जिन लोगों में आत्मविश्वास नहीं था, उन्हें एक त्राणकारी शक्ति की आवश्यकता हुई।'' आत्मविश्वास से रहित लोग ही किसी त्राणकारी शक्ति की तलाश में भक्ति की ओर जाते हैं। मनुष्य को महत्त्वहीन मानने वाली भक्तिवादी जीवन-दृष्टि का निषेध कर प्रसाद एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और मनुष्य-केंद्रित भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। धर्म के संबंध में 'स्कंदगुप्त' नाटक में धातुसेन का यह कथन देखना प्रासंगिक है- 'जिस धर्म के आचरण के लिए पुष्कल स्वर्ण चाहिए, वह धर्म जन-साधारण की संपत्ति नहीं।'' प्रसाद बार-बार धर्म और संस्कृति की विकृत व्याख्या के समानांतर उसके वास्तविक स्वरूप की याद दिलाते हैं। विजय बहादुर सिंह सही लक्षित करते हैं कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के केंद्रीय प्रश्न 'हम कौन हैं' का सबसे सटीक उत्तर एकमात्र प्रसाद ही देते हैं।

इन मुद्दों से इतर प्रसाद की स्त्री-दृष्टि पर भी बात आवश्यक है। विजय बहादुर सिंह ने भी इस पर गंभीरता से विचार किया है। दरअसल, किसी रचनाकार की स्त्री-दृष्टि और पक्षधरता का पता इससे चलता है कि वह अपने स्त्री पात्रों को कौन सी भूमिका देता है और पुरुष की तुलना में उसे कहाँ 'लोकेट' करता है। इस दृष्टि से देखें तो प्रसाद अपने समकालीन रचनाकारों से ही नहीं बल्कि बाद के रचनाकारों से भी बहुत आगे दिखाई देते हैं। 'कामायनी' की श्रद्धा अपनी वैचारिक निर्मितियों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल और मुक्तिबोध दोनों की आलोचना का पात्र बनती है पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'श्रद्धा' जैसी बौद्धिक स्त्री पात्र प्रसाद के समकालीन या उनके बाद के किसी रचनाकार के पास है? विजय बहादुर जी लिखते हैं कि ''मनु के जीवन में वह प्रेरणा भी है, जीवन-संगिनी और मार्ग- निर्देशिका भी। उसमें प्रतिवाद की शक्ति भी है और प्रबोधन की भी।'' श्रद्धा-सर्ग के बारे में उनकी टिप्पणी गौरतलब है- 'जीवन से विरक्त हो उठे लोगों के लिए जैसे वह एक नई गीता का प्रवचन हो जिसमें अर्जुन की जगह विरक्त मनु और कृष्ण की जगह श्रद्धा बैठी हो।''

श्रद्धा और इड़ा जैसे पात्रों को पुनर्सजित करके प्रसाद स्त्री की एक नई भूमिका का स्वपन देख रहे थे। बौद्धिक और सामाजिक स्तर पर स्त्री को न सिर्फ पुरुष के समानांतर खड़ा करना बल्कि उसे नेतृत्वकारी भूमिका देना प्रसाद को अपने समय से बहुत आगे का रचनाकार साबित करता है। यहाँ उनके 'कंकाल' उपन्यास को भी याद करना प्रासंगिक होगा जिसमें वे पिता नाम की संस्था को ही लगभग ध्वस्त कर देते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' का यह कथन तो मानों स्त्री स्वतंत्रता का उद्घोष ही है- ''मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास कर लिया है वह मेरे साथ नहीं चल सकता।''

विजय बहादुर सिंह की यह किताब निश्चय ही प्रसाद संबंधी मूल्यांकन में एक नया प्रस्थान बिंदु है। पुस्तक से गुज़रने के बाद हमें आश्चर्य होता है कि प्रसाद को ऐसे भी देखा और समझा जा सकता है। यह पुस्तक प्रसाद के प्रति रूढ़ हो चुके 'कॉमनसेंस' को तोड़ने वाली है। विजय बहादुर सिंह मानते हैं कि छायावाद वस्तुत: भारतीयता का एक नव क्रांतिकारी संस्करण है। मुझे कहने दीजिए कि उनकी यह पुस्तक 'जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद' परंपरागत प्रसाद का क्रांतिकारी भाष्य है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

रज्जो मिस्त्री

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

हिन्दी की सुपरिचित कथाकार और प्रसिद्ध उपन्यास धर्मपुर लॉज की लेखिका प्रज्ञा की स्त्री जीवन की विविध छवियों पर लिखी कहानियों का संग्रह रज्जो मिस्त्री इन दिनों काफी चर्चा में है। इसके पूर्व प्रज्ञा की प्रमुख पुस्तकें तक़्सीम, मन्नत टेलर्स (कहानी संग्रह), गूदड़ बस्ती, धर्मपुर लॉज (उपन्यास), नुक्कड़ नाटक : रचना और प्रस्तुति, जनता के बीच जनता की बात, नाटक से संवाद, नाटक : पाठ और मंचन, कथा एक अंक की (नाट्यालोचना से संबंधित किताबें), तारा की अलवर यात्रा (बाल साहित्य), आईने के सामने (सामाजिक सरोकारों पर आधारित) प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन में इतनी विविधता एक साथ कम देखने को मिलती है। प्रज्ञा के कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति की सौंधी महक है तथा लेखनी में ताज़गी और नवीनता है। इनके कथा साहित्य में स्त्री के कई रूप दिखाई देते हैं। कथाकार प्रज्ञा के कथा साहित्य में रोचकता तथा सकारात्मकता पाठकों को आकर्षित करती हैं। लेखिका अपने आस-पास के परिवेश से चरित्र खोजती है। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इनकी कहानियों की कथा-वस्तु कल्पित नहीं है, संग्रह की कहानियाँ सचेत और जीवंत कथाकार की बानगी है और साथ ही मानवीय संवेदना से लबरेज़ हैं। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी 10 कहानियाँ हैं।

संग्रह की पहली कहानी "मौसमों की करवट" को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। पति द्वारा अपनी पत्नी के शोषण का चित्रण इस कहानी में हुआ है। कथाकार ने कहानी का सृजन बेहतरीन तरीके से किया है। इस कहानी में पंजाबी भाषा की सौंधी महक भी है। कहानीकार ने एक नारी की दयनीय गाथा को कहानी की मुख्य किरदार संजू के माध्यम से मार्मिक ढंग से कलमबद्ध किया है। संजू के जीवन की कहानी मन को भिगोती है। संजू की व्यथा और उसके नारकीय जीवन का जीवंत दृश्य गहरे तक हिलाकर रख देता है। कथाकार ने संजू के बहाने स्त्री-जीवन के कटु-कठोर यथार्थ का मार्मिक चित्रण किया है। जीवन यथार्थ के कटु सत्य से जूझती संजू जैसी नारी हमारी चेतना को झिंझोड़ती है। यह रचना संजू जैसी नारी की अभिशप्त ज़िंदगी का जीवंत दस्तावेज़ प्रतीत हुई है। इस कहानी में एक तरफ अदम्य साहस, त्याग और जिजीविषा है तो दूसरी ओर नियति एवं पुरुष सत्तात्मक मानसिकता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की देह प्रमुख है। स्त्री का मन और व्यक्तित्व गौण है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जीवनयापन करनेवाली स्त्री पारिवारिक, सामाजिक उत्पीड़न के दंश को हमेशा सहन करती आई है। प्रतिकूल परिस्थिति में जीवट होने का भाव संजू के इस कथन से स्पष्ट है – बरसों आपकी इज्ज़त मैं ही ढाँपती रही हूँ पापाजी। शादी के सात साल के भीतर कम ज़ुल्म नहीं ढाए आपके बेटे ने। कितनी दफा रोका ख़ुद को मैंने इतना क़ानून तो हर औरत जानती है अपने बचाव का। और आप सब समझती हूँ क्यों नहीं दोगे मुझे मेरे बच्चे। मेरी इतनी सेवाओं

का भी कभी कोई ईनाम नहीं दिया आपने। एक बहू की सेवा के बदले सिफर, एक पत्नी की सेवा के बदले सिफर, एक मज़दूर की सेवा के बदले सिफर। कितनी चाकरी कराई है आपने। वह भी एकदम मुफ्त, जानते हैं न आप? इसके बदले में मुझे मिला क्या? अपने बच्चों के पिता को मारने का इल्ज़ाम। जेल की ज़िल्लत। और तो और मेरे बच्चे भी छीन लिए मुझसे। इतनी नफ़रत ? (पृष्ठ 21)

" उलझी यादों के रेशम" आत्मीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। कहानी में एक बेटी अपने वृद्ध पिता को, उनके अकेलेपन को और पिता के घर की यादों को जिस संवेदनशीलता के साथ याद करती है, वह पाठक को भाव विभोर कर देता है। कथाकार ने इस कहानी में पारिवारिक संबंधों की धड़कन को बख़ूबी उभारा है। एक बेटी की संवेदनाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कहानी में संप्रेषित किया है वह काबिलेतारीफ़ है। लेखिका ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा ख़ुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है।

"परवाज़" में लेखिका ने ख़ुशबू के मानसिक धरातल को समझकर उसके मन की तह तक पहुँचकर कहानी का सृजन किया है। कहानी रोचक है। इस कहानी में एक नवयुवती ख़ुशबू को महाविद्यालय में अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए किन- किन पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है उसका व्यक्त रूप दिया गया है। इस कहानी में कुछ नया और उद्वेलित करता हुआ सच उद्घाटित हुआ है। पूरी कहानी में लेखिका सौतेले बाप को कटघरे में खड़ा करती है लेकिन कहानी के अंत में मालूम होता है कि ख़ुशबू सौतेले बाप को अपने सगे बाप से भी अधिक प्यार करती है और सौतेला बाप भी चाहता है की ख़ुशबू बिटिया पढ़ाई करके बहुत आगे तक जाए। प्रस्तुत कहानी में ख़ुशबू की माँ सगी है और बाप सौतेला है, लेकिन ख़ुशबू की माँ ही अपनी बेटी पर बंदिशें लगाती है। इस कथा में आशुतोष और उपासना का किरदार भी प्रभावशाली है। ख़ुशबू के सपनों को, उसके हौसलों को उड़ान मिलती है आशुतोष और उपासना के सहयोग से।

"फ्रेम" कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। एक स्त्री पात्र रावी को केंद्र में रखकर लिखी गई यह कहानी कमज़ोर स्त्रियों की विवशताओं को दर्शाती है। रावी और जतिन एक ही स्कूल में काम करते हैं। दोनों में प्यार हो जाता है। जब रावी के पिताजी को यह बात मालूम होती है तो वे रावी की नौकरी छुड़वाकर उसे घर बैठा देते हैं और जतिन को उससे मिलने भी नहीं देते हैं। रावी के पिताजी रावी की छोटी बहन की शादी कर देते हैं लेकिन वे रावी की शादी नहीं करते हैं। इस कहानी का एक अंश - जतिन ने सुना, स्कूल में कोई कह रहा था कि "रावी अपने भाई के बेटे को ऐसे सँभाल रही है कि सगी माँ भी क्या सँभालेगी। बड़ी ही आज्ञाकारी और अच्छी लड़की है।" एक बँधक आकाश के नीचे दूसरों की दी हुई बैसाखियों पर चलते अपने टूटे बिखरे सपनों को ख़ुद से भी छिपाते, हरपल तस्वीर की रावी की रक्षा करती वह आज्ञाकारी और अच्छी लड़की नहीं तो और क्या है? (पृष्ठ 65) कहानी पढ़कर लगा कि रावी का अपना अलग व्यक्तित्व नहीं है। कहानी में पितृसत्ता की क्रूरताओं को लक्षित किया गया है। कहानी में लेखिका ने संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं। कहानीकार ने जतिन के मन के द्वंद्व का बहुत सुंदर चित्रण किया है।

"तस्वीर का सच" कहानी हमें ऐसे अँधेरे कोनों से रू-ब-रू करवाती है कि हम हैरान रह जाते हैं। यह मर्दवादी सोच के तले पिसती स्त्री की मर्मस्पर्शी कहानी है जिसमें पति की संवेदनहीनता को रेखांकित किया गया है। "तस्वीर का सच" कहानी पुरुष प्रधान समाज में जी रही बेबस, बंधनों में जकड़ी स्त्री रानी दीदी के शोषण की व्यथा कथा है। रानी दीदी जीवन भर अपने पति रामप्रकाश के अत्याचार सहन करती है। नारी उत्पीड़न का घोर पाश्विक रूप और पुरुष की मानसिकता का विकृत रूप देखना हो तो आपको इस कहानी को पढ़ना होगा। कथाकार ने इस कहानी में एक मध्यवर्गीय महिला बरखा की संवेदना को रूपायित किया है। कथाकार प्रज्ञा ने इस कहानी में रानी दीदी के जीवन के बेहिचक सत्य को उद्घाटित किया है। "तस्वीर का सच" एक सशक्त कहानी है जिसमें स्त्री जीवन की त्रासदियों को लेखिका ने जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। कहानीकार ने कहानी की मुख्य पात्र रानी दीदी का कई स्तरों पर शोषण दिखाया है। समाज में महिलाओं को एक स्त्री की त्रासदी नहीं दिखती है क्योंकि स्त्रियाँ चुपचाप अत्याचार सहन करती है। कई साल की लम्बी बीमारी के बाद आख़िर रानी दीदी गुज़र गई और मरकर उन अनेक अनाम औरतों की पाँत में जा खड़ी हुई जिन्होंने ज़िंदगी के कई हसीन सपने देखे थे जो बुरी तरह कुचले गए। ऐसी भाग्यहीनाओं के लिए रानी दीदी के घर जुटी कई महिलाएँ कह रही थीं – "बड़ी भागवान थी। सुहागन जाएगी।" त्रासदी में विसंगति का रंग गाढ़ा हो चला था। (पृष्ठ 79)

"पाप, तर्क और प्रायश्चित" बिलकुल अलग तरह के विषय पर लिखी गई कहानी है। इस कहानी में धर्म के नाम पर समाज का एक अलग चेहरा सामने आता है। यह कहानी एक युवती के सपनों की हत्या के सवाल की बख़ूबी पड़ताल करती है। कथाकार ने उन परिस्थितियों को सूक्ष्मता से चित्रित किया हैं जिनके कारण एक नवयुवती जो अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहती है लेकिन साध्वी बनने पर विवश हो जाती है। धर्म, कर्मकांड, परंपरा और भारतीय संस्कृति वह हथियार है जो सक्षम स्त्री को बाँधने का कार्य करता है। कथाकार ने एक युवती मीनू के जीवन का कटु यथार्थ इस कहानी में रेखांकित किया है। मीनू धर्म के ठेकेदारों के हाथ का खिलौना बनकर रह जाती है। किसी को प्रेम करने को पाप समझकर पाप के प्रायश्चित के लिए अपनी बेटी को साध्वी बनने को मज़बूर करना धार्मिक कट्टरता को दर्शाता है और समाज के समक्ष एक प्रश्न चिह्न खड़ा करता है। मीनू का इमरान के साथ प्रेम प्रसंग मीनू को धर्म के नाम पर अंधेरे कोनों में जीवन भोगने के लिए

धकेल देता है। यह कहानी विद्रूप सामाजिक सच्चाई को प्रस्तुत करती है। एक पढ़ी-लिखी युवती की निरीहिता और बेचारगी को शोधात्मक ढंग से कथाकार ने जीवंत रूप में बदला है। इस कहानी को पढ़ते हुए कहानी के पात्रों के अंदर की छटपटाहट, उनके अन्तर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है। यह कहानी पाठकों की चेतना को झकझोरती है। यह कहानी एक व्यापक बहस को आमंत्रित करती है। जीवन से भरी, उमंगों में झूमती, सपनों के गीत गुनगुनाती, फिरकी की तरह नाचती, प्रेम के पंख लगाकर उड़ने वाली मीनू और दीक्षा धारण करने वाली साध्वी मीनाक्षी - दोनों में कौनसा सच था, पहचान जटिल थी। क्या यही था मीनू का फेयरवेल? (पृष्ठ 93)

संग्रह की शीर्षक कहानी "रज्जो मिस्त्री" एक अलग तेवर के साथ लिखी गई है। कथाकार ने इस कहानी को इतने बेहतरीन तरीके से लिखा है कि दिल्ली के शाहबाद इलाक़े की कच्ची बस्ती, राजमिस्त्री और बेलदारों द्वारा बनते मक़ान और कोरोना महामारी के कारण लगने वाले लॉकडाउन में दिल्ली से अपने गाँव लौटते ग़रीब मज़दूरों का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है। यह एक मजबूत स्त्री की सशक्त कथा है। इस कहानी में उपन्यास के तत्व मौजूद हैं। लेखिका ने रज्जो के मन की भावनाओं को बख़ूबी व्यक्त किया हैं। कहानी की नायिका रज्जो मिस्त्री शादी के पूर्व अपने पिताजी से राजमिस्त्री का सारा काम सीख लेती है और राजमिस्त्री बनने के सपने बुना करती है और शादी के बाद अपने पति के पास दिल्ली जाकर अपने सपने के कैनवास को और विस्तार देती है। इस कहानी की मुख्य किरदार रज्जो को जिस प्रकार कथाकार ने गढ़ा है, उससे ऐसा लगता है कि रज्जो सजीव होकर हमारे सामने आ गई है। कहानी की नायिका रज्जो एक अमिट छाप छोड़ती है। कथाकार ने इस कहानी का अंत बहुत ख़ूबसूरती और कलात्मकता के साथ किया है- रज्जो हौले से उठी अपने बापू की तरह ही करनी की पहली चोट पुरानी दीवार में दे मारी फिर एक हाथ से करनी में मसाला भरकर दूसरे हाथ से पहली ईंट फ़र्श पर रखी। एक के बाद एक ईंट धरती गई। मसाले से उन्हें जोड़ती गई। साहुल से सीध नापती गई। लाल और धूसर रंग की दीवार ज्यों-ज्यों उठ रही थी उसका एक-एक ज़ख्म भरता जा रहा था। नौ इंच मोटी दीवार उसके लिए अनगिनत सपनों के दरवाज़े खोले दे रही थी। दीवार उठ रही थी और दुखों के पहाड़ ढह रहे थे। करनी की आवाज़ और साहुल की संगत रज्जो में जोश भर रही थी। पसीने में नहाई रज्जो आज रुकी नहीं। वह दीवार उठाती जा रही थी। उसे बस एक ही धुन सवार थी शाम को दिहाड़ी के बाद मुरारी से उसे यह ज़रूर कहना है – "जल्दी से ठीक हो जा, फिर अपने घर की दीवार दोनों साथ मिलकर उठाएँगे।" (पृष्ठ 116)

उदारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के दौर में सबसे अधिक प्रभावित हुआ है वह है मानवीय रिश्ते व संवेदना। इसी पृष्ठभूमि पर कथाकार प्रज्ञा ने "इमेज" कहानी का ताना-बाना बुना है। "इमेज" कहानी की नायिका रूपल दी कहानी का हर किरदार रूपल दी, नीता, शालिनी, अनुराग, आशा अपनी विशेषता लिए हुए हैं और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आते हैं। लेखिका ने पात्रों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से निरूपित किया है और उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। कहानी में बाज़ार का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। पार्लर चल नहीं रहा था शायद उतनी अच्छी तरह। अकेली रूपल दी और समस्याओं का बढ़ता हुआ जंगल, दुनिया भर के दंद-फंद। ऐसे में भी दी किसी भी तरह अपनी इमेज को ख़त्म नहीं करना चाहती थीं। शुरू से ही देखा है नीता ने हरदम पार्लर की बेहतरी के लिए उन्हें नया सोचते करते हुए और अब यह नई संस्था सच में बेसहारे का सहारा ही बनाने जा रही थी। दरअसल रूपल ब्यूटी पार्लर के कमज़ोर क़दमों को ही शक्ति चाहिए थी। बाज़ार के दबाव के चलते उससे बचाव के लिए पैदा किया एक और बाज़ार थी यह संस्था - शक्ति। दो हज़ार रुपये का नियमित भुगतान शक्ति के लिए नहीं पार्लर की संजीवनी थी। अब समझ आने लगी आशा की बात - हमें तो बस ऐसी महिलाओं की चेन क्रिएट करनी है। (पृष्ठ 125)

"बतकुच्चन" कहानी संवादात्मक कहानी है। स्त्री का दु:ख संवादों से खुलता है। कहानी की कथावस्तु भावप्रधान है। प्रज्ञा ने इस कहानी में स्त्री संवेगों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। लेखिका ने परिवार के सदस्यों के बीच के संबंधों, उन संबंधों की गर्माहट, जिंदादिली इत्यादि को बख़ूबी रेखांकित किया है। कहानीकार ने रिश्तों को प्रतीकात्मकता के साथ रेखांकित किया है - हाँ छोटी ! सगी मौसी हैं हमारी। फिर हम तो उन शादी ब्याह में भी हो आते हैं जिनसे कोई नाता रिश्ता कभी नहीं रहना। ये तो सेज रिश्ते हैं। छोटी ! रिश्तों का बीज तो ऐसा है की ज़मीन में पड़ा तो अंकुर भी फूटेगा छतनार पेड़ भी उठ खड़ा होगा। पतझड़ भी आएगा और बसंत भी। एक ही जीवन में झलझलाती नदी और तूफानी बाढ़ सब साथ देखने पड़ते हैं। जैसे जीवन चलता है वैसे ही रिश्ते। दोनों कभी ख़त्म कहाँ होते हैं री ! (पृष्ठ 144)

"धर्राख अपनी धरमसाला" कहानी अपने कथ्य और कथानक से काफी रोचक बन पड़ी है। यह कहानी कथाकार की पैनी लेखकीय दृष्टि तथा सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव का जीवंत सबूत है। कथाकार ने इस कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है जिसमें इस कहानी की मुख्य किरदार अमृता को अपनी चेतना से जूझते हुए दिखाया गया है। स्त्री एवं उसकी कठिनाईयों का बिंब-प्रतिबिंब इस कहानी में है। लेखिका कामवाली बाइयों की ज़िंदगी के हर पार्श्वों को देखने, छूने तथा उकेरने की निरंतर कोशिश करती हैं। कहानी के संवाद अत्यंत सशक्त हैं। भाषा की रवानगी और किस्सागोई की कला इस कहानी को और अधिक सशक्त बनाती है। कहानी का छोटा सा अंश प्रस्तुत है – धर्म की भारी क्षति पर निरंजन के शब्द आग की तरह भभक रहे थे। उसका पूरा घर इस आग पर पवित्र जल के छिड़काव को लालायित था।

पर इस आग के नीचे एक और आग दबी थी, जिसकी भनक उसने किसी को नहीं लगने दी। निरंजन के छिपाने के बावजूद घर की दीवारें उस सच को जानती थीं। झूठे आरोप में बेइज्ज़त करके निकाले जाने से पहले अमृता की आग भरा ज्वालामुखी इस घर से मिले एकमात्र सस्ते सूट का थैला उछालते हुए निरंजन के आगे फट पड़ा था - "धर्राख अपनी धरमसाला।" (पृष्ठ 152)

संग्रह की कहानियों के सभी पात्र संजू, रश्मि, रेनू, आशा, सीमा (मौसमों की करवट), माया, अखिल, छाया, वरुण (उलझी यादों के रेशम), ख़ुशबू, आशुतोष, उपासना (परवाज़), रावी, जतिन (फ्रेम), रानी दीदी, बरखा (तस्वीर का सच), मीनू, (पाप, तर्क और प्रायश्चित) अद्‌भुत और अविस्मरणीय हैं। इनकी कहानियों में ज़बर्दस्त किस्सागोई है। मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रज्ञा की कहानियाँ खरी उतरती है। कहानियों में हर उम्र, हर वर्ग की स्त्री की विवशता को कथाकार ने बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। संग्रह की कहानियों के पात्रों की स्वाभाविकता, सहजता, सामाजिक, आर्थिक स्थिति आदि इस कृति को बेहद उम्दा बनाती है। इस संग्रह की कहानियाँ अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं। स्त्री के मन को छूती हुई ये कहानियाँ पाठक के मन में समा जाती हैं। इस संकलन की कहानियों में लेखिका की परिपक्वता, उनकी सकारात्मकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। प्रज्ञा की कहानियाँ बदलते समय की आहट हैं। लेखिका जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिठ्ठों को उद्‌घाटित करने में सफल हुई है। कहानियों में पात्रों के मन की गाँठें बहुत ही सहज और स्वाभाविक रूप से खुलती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ जीवन और यथार्थ के हर पक्ष को उद्‌घाटित करने का प्रयास करती है। कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है। कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। इस संग्रह की कहानियाँ पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं। रिश्तों और मानवीय संबंधों की बारीक पड़ताल की गई है। संग्रह की सभी कहानियाँ मानवीय चरित्र का सहज विश्लेषण करती हैं। कथाकार ने नारी जीवन के विविध पक्षों को अपने ही नज़रिए से देखा और उन्हें अपनी कहानियों में अभिव्यक्त भी किया हैं।

इन कहानियों में जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों का सहज चित्रण हुआ है। अनुभूतियों की सहजता को प्रज्ञा के कथा साहित्य में देखा जा सकता है। कहानीकार ने पुरुषों और नारियों की सूक्ष्म मनोवृत्तियों, जीवन की धड़कनों को इन कहानियों में अभिव्यक्त किया है। समाज द्वारा नारियों के दमन को कथाकार ने अत्यंत गहनता और सहजता से प्रस्तुत किया है और साथ ही सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाले मानसिक दबाव, द्वंद्व आदि का चित्रण किया है। सभी कहानियाँ आज के समय की सार्थक अभिव्यक्ति हैं। प्रज्ञा की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहानियाँ पढ़ते हुए आप अंदाज़ा नहीं लगा पाते कि आगे क्या होने वाला है। इन कहानियों में कई नई परतें खुलती हैं। प्रज्ञा की अधिकांश कहानियों का अंत बहुत ही अप्रत्याशित होता है। कहानियाँ कल्पनाओं से परे जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ी हुई लगती हैं। प्रज्ञा के कथा साहित्य का कथ्य एवं शिल्प बहुत ही बेजोड़ है जो उन्हें अपने समकालीन लेखकों की पहली पंक्ति में स्थापित करती है। ये संघर्षशील स्त्रियों की कहानियाँ हैं। कथाकार रिश्तों की गहन पड़ताल करती हैं। कहानीकार नारी पात्रों की वैयक्तिक चेतना को प्रर्याप्त वाणी दे पाई है। प्रज्ञा पात्रों के मानसिक धरातल को समझकर उनके मन की तह तक पहुँचकर कहानी का सृजन करती है।

समाज में बढ़ रही संवेदनहीनता का विकृत चेहरा लेखिका को व्यथित करता है। प्रज्ञा की कहानियों में निहित स्त्री जीवन और उनका सामाजिक सरोकार यह सोचने पर विवश करता है की आज भी स्त्री दोयम दर्जे का जीवन जीती हैं। लेखिका व्यवस्था और समाज की दिशा पर पाठकों से प्रश्न करती दिखती है। प्रज्ञा की कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है। इन कहानियों को पढ़ना अपने समय और समाज को गहराई से जानना है। प्रज्ञा ने इन कहानियों के माध्यम से साबित किया हैं कि स्त्री जीवन की विविध छवियों को सहेज पाना सिद्धहस्त लेखनी द्वारा ही संभव है। प्रज्ञा के पास एक स्पष्ट और सकारात्मक दृष्टि के साथ कहानी कहने का एक विलक्षण तरीका है। ये अपने अनुभवों को बड़ी सहजता से कहानी में ढाल लेती हैं। इन कहानियों में अनुभूतिजन्य यथार्थ है। कथाकार ने इस संग्रह की कहानियों में स्त्रियों के मन की अनकही बातों को, उनके जीवन के संघर्ष को और उनके सवालों को रेखांकित किया हैं। इस संग्रह की कहानियाँ ज़िंदगी की हक़ीक़त से रू-ब-रू करवाती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ और कहानियों के चरित्र धीमे और संजीदा अंदाज़ में पाठक के भीतर उतरते चले जाते हैं।

हर कहानी में अपने वक़्त की धड़कनें होती हैं और वे सब प्रज्ञा की इन कहानियों में हैं। कहानियों में जीवन की गहराई है। प्रज्ञा ने सहजता से अपने समाज और आज के समय की सच्चाइयों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया हैं। कथाकार की भाषा में पाठक को बाँधे रखने का सामर्थ्य है। संवेदना के धरातल पर ये कहानियाँ सशक्त हैं। संग्रह की हर कहानी उल्लेखनीय तथा लाज़वाब है और साथ ही हर कहानी ख़ास शिल्प लिए हुए है। इन कहानियों में स्त्री जीवन के यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। ये कहानियाँ सिर्फ़ हमारा मनोरंजन नहीं करती बल्कि समसामयिक यथार्थ से परिचित कराती हैं। इन कहानियों में प्रयुक्त कथानुकूलित परिवेश, पात्रों की अनुभूतियों, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कहानियों में लेखिका की उत्कृष्ट कला-कौशलता का परिचय देती है। कथा सृजन की अनूठी पद्धति प्रज्ञा को अपने समकालीन कथाकारों से अलग खड़ा कर देती है। कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है।

000

पुस्तक समीक्षा

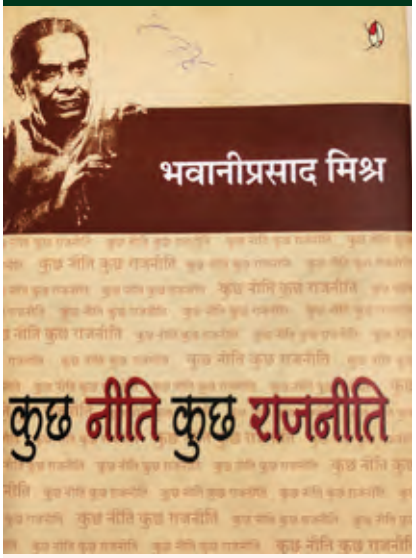

(निबंध संग्रह)

कुछ नीति कुछ राजनीति

समीक्षक : कैलाश मण्डलेकर

लेखक : भवानी प्रसाद मिश्र

प्रकाशक : -प्रतिश्रुति प्रकाशन कोलकोता

कैलाश मण्डलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड,
माता चौक खंडवा म. प्र.450001
मोबाइल- 9425085085,
ईमेल- kailash.mandlekar@gmail.com

किताब का नाम है "कुछ नीति कुछ राजनीति। किताब के लेखक हैं पंडित भवानी प्रसाद मिश्र। यह उनका निबंध संग्रह है जो उनकी कविताओं की तरह ही पठनीय और प्रासंगिक है। पंडित भवानी प्रसाद मिश्र मूलत: सिवनी मालवा के अंतर्गत आने वाले एक नामालूम से गाँव टिगरिया के रहने वाले थे। उनका जन्म वहीं हुआ था। यह भी गौरव की बात है कि उन्होंने बहुत साधारण से शब्दों और नितांत बतकही के अंदाज़ में बहुत असाधारण कविताएँ लिखीं। इन कविताओं में गीत फरोश, सन्नाटा और सतपुड़ा के घने जंगल जैसी कविताएँ शामिल हैं, जो अक्सर याद की जाती हैं। पंडित भवानी प्रसाद मिश्र जितने बड़े कवि थे, उतने ही ही निराले गद्यकार भी थे। वे तार सप्तक के कवि के रूप में भी ख्यात हैं। वे शब्दश: गांधीवादी थे और उनका गांधीवाद ओढ़ा हुआ तथा बनावटी नहीं था जैसा कि आजकल चलन है, गांधीवाद दरअसल उनके आचरण और जीने की प्रक्रिया में शामिल था। वे कई बार खंडवा आये। एक बार यहाँ माणिक्य स्मारक वाचनालय में उनका काव्य पाठ भी हुआ था। मैंने पहली बार उन्हें तब ही देखा था। यह भी गौरतलब है कि उनके कृतित्व-व्यक्तित्व पर अपने समय के महत्त्वपूर्ण कवि प्रेमशंकर रघुवंशी ने एक किताब का सम्पादन किया, जिसका नाम है "टिगरिया का लोक देवता - भवानी प्रसाद मिश्र"।

पंडित भवानी प्रसाद मिश्र की उपरोक्त कृति 2014 में प्रकाशित हुई है। और अभी इस वर्ष 2021 में उसका पुनर्मुद्रण हुआ। इस कृति के बारे मे प्रकाशक का कहना है कि "कुछ नीति कुछ राजनीति अपने आप में गहरे अर्थ धारण करती है। गांधी के भीतर जो भारत है उससे गांधी की नीति तय होती है और भारत के भीतर जो गांधी है उससे एक राजनीति तय होती है।" दरअसल गांधी को देखने के कितने कोण हो सकते हैं, इस बात को समझने के लिए यह एक ज़रूरी किताब है। और इस दौर की राजनीति में गांधी की प्रासंगिकता क्या है और कितनी है इसे भी जानने के लिए यह किताब काफी मददगार साबित हो सकती है। आलोच्य कृति में लगभग ग्यारह मध्यम आकार के निबंध हैं। जो अलग-अलग समयों पर लिखे गए हैं। सारे ही आलेखों के केंद्र में गांधी है। सिर्फ एक आलेख ऐसा है जो लेव तोलस्तोय पर एकाग्र है, जिसका शीर्षक है "लेव तोलस्तोय का दर्शन"। पुस्तक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें भारतीय संस्कृति की चर्चा है। भारतीय संस्कृति के बाबत विश्व के और ख़ास तौर से पश्चिम के विचारक क्या सोचते हैं, इसकी विशद व्यख्या भावनी भाई ने की है।

आलोच्य कृति का पहला लेख अहिंसा को लेकर है। इसका शीर्षक है अहिंसा-संस्कृति का आधार स्तम्भ, आलेख में धर्म और संस्कृति की विशद व्याख्या है। अतीत में जो राजसत्ताएँ रही हैं उनकी कार्यशैली और लक्ष्य हिंसा और युद्ध से वाबस्ता रहे हैं। मोहनजोदड़ो से लेकर आज़ादी के दौर तक का समूचा कालखंड युद्ध और युद्ध की तैयारियों की ख़बर देता है। महाभारत भी युद्ध का ही महाकाव्य है। कालांतर में हमारे देश में जब संत परम्परा का उदय होता है तब अहिंसा को एक विधायक तत्व की तरह स्वीकार किया जाता है। अहिंसा के विचार को व्यावहारिक और मूर्त रूप देने में गांधी जी की अहम् भूमिका रही है। गांधी ने कहा कि अहिंसा और प्रेम भारत की आत्मा है। हम अपनी आत्मा को कैसे नष्ट होने दे सकते हैं। पुस्तक में संग्रहित एक अन्य आलेख "अहिंसा की प्रतिभा" में विश्व के अन्य देशों की सामरिक नीति और आंतरिक भय को समझने का प्रयास किया गया है। आज जितने भी बड़े कहे जाने वाले देश हैं वे सब न्यूक्लियर ताकतों से सम्पन्न हैं। हालाँकि वे जानते हैं कि यह सब मानव विरोधी हैं। लेकिन वे उसे छोड़ना नहीं चाहते। बल्कि एक अजीब से भय की वजह से वे निरंतर शस्त्र निर्माण में लगे हैं। जबकि गांधी के अहिंसा का दर्शन एक ऐसा विचार है जो भय से मुक्ति का एक मात्र साधन

है। आदमी यदि भय से मुक्त है तो शस्त्र निर्माण की ज़रूरत ख़त्म हो जाती है। "लेखक गांधी - एक लफ्जे दर्द" गांधी जी की दक्षिण अफ्रीका यात्रा पर केन्द्रित है। अफ्रीका में बसे भारतीय मूल के लोगों की दुर्दशा को देख कर गांधी बहुत आहत थे। तब पहली बार उन्होंने वंचितों के विद्रोह स्वरूप कलम उठाई। और अपनी सीधी-सादी, सरल तथा मुहावरों से मुक्त भाषा में जो कुछ लिखा वह बहुत असरकारी सिद्ध हुआ। लोगों में संगठित होने तथा अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का जज़्बा पैदा हुआ। तथा गांधी एक लेखक और पत्रकार के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए। यह इस बात को भी पुष्ट करता है कि लेखक यदि अपने देखे सच को बिना लाग-लपेट के अभिव्यक्त करे तो वह सीधे लोगों के हृदय तक पहुँचता है। भाषा की कलात्मकता बाज दफे विचार को धूमिल ही करती है। गांधी की सारी अभिव्यक्ति कलात्मकता से परे है। "गांधी नीति" नामक आलेख में सत्याग्रह की महत्ता है। जबकि "लेव तोलस्तोय का दर्शन" शीर्षक से लिखे गए लेख में महान् उपन्यासकार तथा विचारक तोलस्तोय के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का ज़िक्र है। तोलस्तोय का एक वाक्य बहुरत प्रेरक है उन्होंने कहा था कि "अपने बारे में अच्छा सुनने और अपने को भला आदमी माने जाने की इच्छा इतनी ज़बरदस्त और बुरी है कि वह हमारे हर अच्छे काम पर पानी फेर देती है।" यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गांधी तोलस्तोय को बहुत मानते थे। मिश्र जी ने उनकी चाइल्ड हुड नामक कृति का विशेष तौर पर उल्लेख किया है।

पुस्तक में संग्रहित एक अन्य आलेख "इस व्याकुलता को समझिए" में निरस्त्रीकरण पर गहरा विवेचन है। तथा इस संदर्भ में गांधी की हिंसा की प्रसंगानुकूल व्याख्या की गई है। "लोकतंत्र का तंत्र" तथा भारत की राष्ट्रीयता जैसे आलेख क्रमश: प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा इस दौर की राजनीतिक पतनशीलता पर एकाग्र हैं। जो पंडित भवानी मिश्र के गंभीर राजनीतिक अध्येता होने का परिचय देते हैं। इन आलेखों में विश्व की विचार धाराओं का अध्ययन और विश्लेषण किया गया है। लेकिन समस्त विचारधाराओं के बीच गांधी दर्शन की उपादेयता और प्रासंगिकता का प्रकाश अब भी निष्कंप और शाश्वत है। इस तथ्य को लेखक ने बहुत गहराई से रेखांकित किया है।

"सर्वोदय पत्रकारिता" नामक आलेख में पत्रकारिता के विभिन आयामों पर बात की गई है। पत्रकारिता का वर्तमान स्वरूप काफी बदल गया है। और आज का सारा परिदृश्य बहुत निराशाजनक है। गांधी की पत्रकारिता में सबके हित की चिंताएँ थीं। और सबसे बड़ी बात निर्भीकता थी। इस आलेख में इन्डियन ओपिनियन, सरस्वती, यंग इंडिया, हरिजन, नवजीवन, प्रताप, केसरी, वन्दे मातरम्, साप्ताहिक बातचीत, पैदाल पत्र, सर्वोदय मासिक या महिला आश्रम पत्रिका जैसे अनेक अख़बारों की नीतियों तथा सम्पादकीय दृष्टि का विवेचन है। ये वे अख़बार थे, जिनका प्रकाशन एक मिशन के तौर पर हुआ था। तथा जिनसे या तो गांधी जी का सीधा जुड़ाव था या वे इनमें नियमित लिखा करते थे। जैसा कि ज़ाहिर कि इन पत्र पत्रिकाओं में अंग्रेज़ी हुकूमत का विरोध हुआ करता था। और इनमें लिखने वालों को प्राय: जेल भेज दिया जाता था। सज़ा से बचने के लिए तब कई तरह के प्रयोग हुआ करते थे। पैदल पत्र एक ऐसा ही प्रयोग था यह एक पन्ने का अख़बार था जो पैदल चलते हुए कोई भी बाँट देता था। तथा किसी को पता नही चलता था कि इसे कौन बाँट रहा है या यह कहाँ से छपकर आ रहा है। मूल बात यह थी कि साम्राज्य वादी सरकार की मुख़ालिफ़त के संदेश लोगों तक पहुँचें।

कुल मिलाकर कुछ नीति कुछ राजनीति भवानीप्रसाद मिश्र जी के चिंतन परक निबंधों तथा गांधी विचार दर्शन पर एकाग्र एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस कृति में विश्व के विभिन्न विचारकों के समक्ष गांधी सर्वथा अलग खड़े दिखाई देते हैं। अलग भी और उत्कृष्ट तथा स्वीकार्य भी। बशर्ते गांधी को भवानी भाई की नज़र से देखा जाए।

000

नई पुस्तक

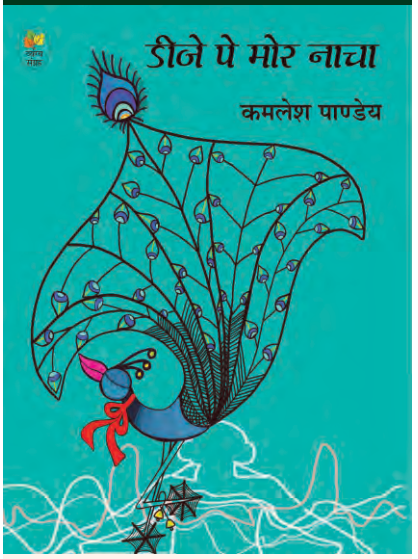

(व्यंग्य संग्रह)

डीजे पे मोर नाचा

लेखक : कमलेश पाण्डेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

व्यंग्यकार कमलेश पाण्डेय के पचास व्यंग्य लेखों का संकलन है यह व्यंग्य संग्रह डीजे पर मोर नाचा। वरिष्ठ व्यंग्यकार आलोक पुराणिक इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं-कमलेश पाण्डेय अगर गायक होते, तो उस कोटि के होते, जिनके कार्यक्रम कम होते हैं, पर जितने भी होते हैं, भरपूर होते हैं और सुधी श्रोताओं की दाद बटोरते हैं। कमलेश पाण्डेय पुराने व्यंग्यकार हैं, पर क्रिकेट के टेस्ट खिलाड़ियों की तरह रुक-रुक खेलने वाले हैं, धीमे खेलनेवाले हैं। कलात्मक खेल की फिक्र करने वाले हैं, कुल मिलाकर क्लासिक शैली के खिलाड़ी की तरह कमलेश पाण्डेय क्लासिक लेखन में यकीन करते हैं, पर साथ में वह नई तकनीक, नई शैलियों से अनभिज्ञ नहीं हैं। अर्थशास्त्र की बारीकियाँ खूब समझते हैं और अर्थशास्त्र कहाँ विसंगतिजन्य व्यंग्य का स्त्रोत हो रहा है, यह भी वह जानते हैं और रेखांकित करते हैं। उनके पास एक व्यापक रेंज है, 'डीजे' से लेकर 'जागो ग्राहक जागो' तक का हिसाब-किताब उनके पास है।

000

पुस्तक समीक्षा

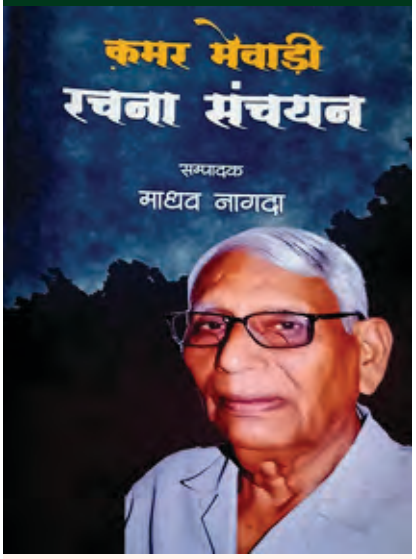

(एकाग्र)

क़मर मेवाड़ी: रचना-संचयन

समीक्षक : प्रो. मलय पानेरी

संपादक : माधव नागदा

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रो. मलय पानेरी
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
डीम्ड विश्वविद्यालय
उदयपुर–राजस्थान 313001

क़मर मेवाड़ी हमारे समय के एवं उनके स्वयं के जीवन के एक सच्चे और खरे रचनाकार हैं। अपने आसपास के देखे को लिख लेना उतना आसान नहीं है, जितना कि देख लेना। इतना ही नहीं, अपने देखे को सामान्य सामाजजिक तक सरल भाषा में पहुँचा देना तो और भी कठिन है। फिर भी इसे क़मर मेवाड़ी जी कुशलता से साध लेते हैं। उनकी कहानियाँ और कविताएँ इसका अच्छा प्रमाण हैं। कोई व्यक्ति निर्मित रचनाकार नहीं है बल्कि जीवन की घटनाएँ और परिस्थितियाँ उसके भीतर को खँगाल देती है, टटोल देती हैं, बस यहीं से रचनाशीलता कदमताल करती हुई अपनी यात्रा तय करती है।

ऐसा कम ही होता है कि किसी पुस्तक के संपादक द्वारा लिखी भूमिका उस पुस्तक का महत्त्व बन जाती है। फिर ऐसे लेखक की कृति की भूमिका तैयार करना, जो न केवल लेखक हो, न केवल संपादक हो, न केवल सामाजिक कार्यकर्ता हो, न केवल अपने समकालीन लेखक वर्ग का हितैषी हो, न केवल चिंतक हो, न केवल पत्रकार हो और न केवल खरा स्पष्टवादी हो। क़मर मेवाड़ी इन सब गुणों का एक नाम है। व्यक्तित्त्व के इन पुंजों पर पर्याप्त दृष्टि डालना बहुत मुश्किल और दुष्कर कार्य है। माधव नागदा जी निश्चित रूप से बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने अपनी लिखी भूमिका से पुस्तक खुले उसके पहले ही उसे खोल दिया।

श्री माधव नागदा जी ने इस तय की हुई यात्रा का वृत्तांत "क़मर मेवाड़ी: रचना संचयन" शीर्षक से पुस्तक रूप में पाठकों के सम्मुख रखा है। माधव नागदा जी स्वयं एक शीर्ष रचनाकार हैं। आपके रचनात्मक कृतित्त्व से हिन्दी का पाठक-जगत् अच्छी तरह से परिचित है। क़मर जी के रचनात्मक अवदान को संपूर्णता में जानने के लिए जिन गवाक्षों की आवश्यकता होती है, वे सभी इस पुस्तक में विद्यमान हैं। फिर भी क़मर जी को व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप से हमारे सामने लाने में माधव नागदा जी की संपादन-कुशलता का योगदान अतिरिक्त रूप से प्रशंसनीय है। पुस्तकारंभ में क़मर जी का आत्मकथ्य ही बता देता है कि अब्दुल लतीफ़ से क़मर मेवाड़ी तक की यात्रा का सच क्या है! एक साधारण इंसान की विचार-प्रक्रिया किस तरह रचनात्मकता का आवश्यक अंग बन जाती है- यह हम क़मर जी की लेखनी से ही बख़ूबी जान पाते हैं। सन् 1959 के मैट्रिक पास क़मर मेवाड़ी पर हम इसलिए गर्व करें कि उसी समय उनकी पहली कहानी तत्कालीन प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में छपी थी। सन् 1976 में उनका पहला कहानी-संग्रह "राजस्थान साहित्य अकादमी" ने छापा था। दूसरा –संग्रह भी

लगभग इसी वर्ष प्रकाशित हुआ था। "लाशों का जंगल" एवं "रोशनी की तलाश" संग्रह में आई कहानियों का कथानक स्पष्ट करता है कि उनकी कहानियाँ रोशनी की तलाश पर ही ख़त्म नहीं हो जाती हैं बल्कि रोशनी की उम्मीद पर पूरी होती है। सबसे अच्छी बात यह भी कि जब क़मर जी की प्रथम कहानी प्रकाशित हुई, यही वह समय था जब हिन्दी कहानी भी बदलाव के मोड़ पर थीं। जीवन-मूल्य, रिसते संबंध, अमानवीय होते रिश्ते, लोकतांत्रिक व्यवस्था में उपेक्षित लोक, जनान्दोलनों से उठता विश्वास आदि ऐसी तल्ख सच्चाइयाँ हैं, जिन्हें हिन्दी कहानी अपना विषय बना रही थीं। ऐसे दुस्समय में क़मर जी की कहानियाँ इंसानी अहसास को बचा रही थीं। और यही वह समय भी था, जिसे मुक्तिबोध ने "अब अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने होंगे" के रूप में पहचान लिया था; जिसमें क़मर मेवाड़ी की रचनाएँ जिजीविषा जगाने का काम कर रही थीं। हम जानते हैं कहानी जीवन में नहीं उतरती हैं, जीवन कहानी में उतरता है। साहित्य समाज से अलग नहीं होता है, इसलिए क़मर मेवाड़ी की रचनाएँ समाज को अलग रख कर अपनी दुनिया नहीं रचती हैं। समाज का दलित, उत्पीड़ित, निम्न तबका उनकी कहानियों में यथार्थ की सच्चाई के साथ उपस्थित होता है।

इस पुस्तक को माधव नागदा जी ने शानदार और व्यवस्थित तरीके से संपादित कर क़मर मेवाड़ी के साहित्य को एक जगह प्रस्तुत किया है। हिन्दी के पाठक कमर मेवाड़ी जी और माधव नागदा जी दोनों से ही सुपरिचित हैं। दोनों की रचना-विधाएँ भी लगभग समान ही रही हैं। इसलिए माधव जी ने कमर मेवाड़ी जी की लगभग प्राप्त सभी रचनाओं को एवं समय- समय पर उन प्रकाशित लेखों का एक बेहतरीन संकलन तैयार किया है। इस पुस्तक को आत्मकथ्य सहित प्रमुख आठ अध्यायों में बाँटा गया है। इस संपादकीय परिपक्वता के कारण ही कमर मेवाड़ी जी का व्यक्तित्त्व और कृतित्व क्रमश: उत्तम रूप से प्रस्तुत हो सका है। पुस्तक का पहला क्रम "व्यक्तित्त्व की ख़ुशबू" महकाने वाला ही है, इसमें हिन्दी के ख्यात कवि-चिंतक नंद चतुर्वेदी जी, मधुसूदन पाण्ड्या, रूपसिंह चंदेल ने अपने आत्मीय संबंधों के दायरे में क़मर मेवाड़ी को निरखा है। वहीं बृजेन्द्र रेही, डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. सूरज पालीवाल ने क़मर मेवाड़ी जी व्यक्तित्त्व के प्रभाव का अंकन किया है। समकालीन हिन्दी कहानीकार स्वयंप्रकाश ने राजस्थान की साहित्यिक गतिविधियों की सक्रियता के संदर्भ में क़मर मेवाड़ी को याद किया है। वहीं कृष्ण कुमार "आशु" ने साधारण से क़मर मेवाड़ी की असाधारण साहित्य-यात्रा को उल्लेखनीय बताया है। रचनात्मक लेखन का नैरंतर्य और फिर साहित्यिक पत्रिका "संबोधन" के माध्यम से साहित्य का प्रसार भी लगातार करना वाकई कठिन काम था। परन्तु क़मर जी ने इस काम को भी पूरी ईमानदारी और निर्भीकता से किया है।

यहाँ "सृजन का आलोक" खण्ड में उनकी चुनिंदा कहानियों को लिया है, जिससे पाठक उनकी रचना-शैली की एक बानगी प्राप्त कर उस शिखर की भी कल्पना कर लेते हैं जो किसी लेखक की स्पृहा भी होती है। किंतु क़मर जी स्पृहा-मुक्त गंभीर लेखक हैं। उनकी रचनाओं में वह सबकुछ विद्यमान है जो साधारण मनुष्य अपने जीवन के आसपास हमेशा पाता रहा है। जिस तरह हम समाज में अपनी आपसदारी से पहचान बनाते हैं, उसी तरह लेखक के आपसी रिश्ते भी अपने समकालीन सृजनधर्मियों से हाते हैं। यहाँ इस पुस्तक में हमारे प्रदेश एवं प्रदेशोत्तर ख्यात लेखकों ने अपनी यादों में क़मर मेवाड़ी जी को जिस तरह सँजोकर रखा है, वह उनके लेखक-इतर व्यक्तित्त्व को भी नई पहचान देते हैं। इस संदर्भ में हम डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ के एवं डॉ. वेद व्यास के संस्मरणात्मक लेख को देख सकते हैं। किसी रैली में यकायक एक अपरिचित से मिलना और उसके बाद धीरे-धीरे इस परिचय को स्थायी बनाने में क़मर मेवाड़ी "संबोधन" पत्रिका की भूमिका भी तय हो जाती थी। वेदव्यास जी ने उनका सही मूल्यांकन किया है-"क़मर मेवाड़ी राजस्थान के लेखक समुदाय में मौन ग्रामीण चेतना के साधक माने जाते हैं।" साधक का मौन रहना और साधना-वाणी को प्रसार देना कठिन कार्य है किंतु क़मर मेवाड़ी अपने समय में इसी तरह सक्रिय हैं। समाज को लेकर जो सवाल और चिंताएँ हैं, बतौर लेखक कमर मेवाड़ी को वे लगातार व्यथित करती रहती हैं। डॉ. गोपाल शर्मा "सहर" ने उनकी कविताओं में इस छटपटाहट को ढूँढ़ने की सार्थक कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि "पृथ्वी पर सारे प्राणियों में इंसान सबसे अधिक संवेदनशील होते हुए भी अपनी संवेदनशीलता खोता जा रहा है।"

एक रचनाधर्मी का अपने मनुष्य-समाज के प्रति इतना चिंतित होना स्वाभाविक है। इस प्रवृत्ति को कैसे बदला जा सकता है- इसके प्रति रचनात्मक सक्रियता के अलावा सृजनकर्मी के पास कुछ भी नहीं है। नश्तर-क्रांति के विरुद्ध ही रचनाएँ अस्त्र बनती रहें यही किसी लेखक की चाह होती है। गोपाल शर्मा जी ने बीती शताब्दी और वर्तमान समय की वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में एक रचनाकार के दायित्त्व को रेखांकित करते हुए क़मर मेवाड़ी की कहानियों की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है।

"विचारों का ताप" खण्ड में नरेन्द्र निर्मल, माधव नागदा एवं अवध बिहारी पाठक द्वारा कमर मेवाड़ी से लिए साक्षात्कार लेखक, संपादक और सृजनशील व्यक्तियों की रचनाधर्मिता को प्रकट करते हैं। यह सही है कि आर्थिक अभावों के चलते किसी पत्रिका को निकालना सबसे बड़ी चुनौती होती है, फिर भी मेवाड़ी जी ने बे-हद होकर पूरे पचास साल इसे पूरी प्रतिष्ठा के साथ निकाला और हिन्दी लघु पत्रिकाओं की श्रेणी में "संबोधन" का स्थान एवं महत्त्व बनाए रखा। समग्रत: क़मर मेवाड़ी एक जिजीविषा का नाम है, अदम्य साहस का पर्याय है, अनथक प्रयासों का समानार्थक है, क्षमताओं का प्रदर्शक है।

एक जुनूनी व्यक्ति के जीवन की पूर्णता को जानने के लिए माधव नागदा जी संपादित "क़मर मेवाड़ी: रचना- संचयन" एक अतिरिक्त महत्त्व की कृति बन सकी है।

000

पुस्तक समीक्षा

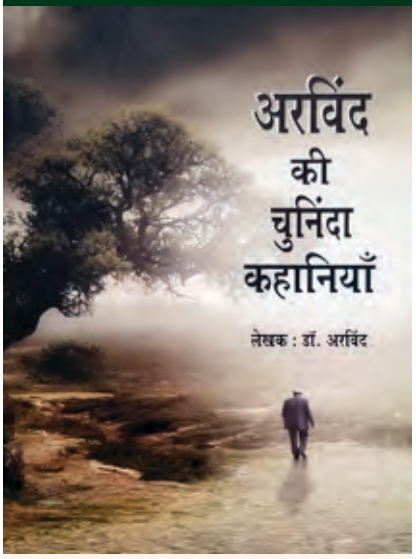

(कहानी संग्रह)

अरविंद की चुनिंदा कहानियाँ

समीक्षक : डॉ. रमाकांत शर्मा

लेखक : डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास
टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी
पेस्तम सागर रोड नं.3, चेम्बूर
मुंबई - 400089 महाराष्ट्र

डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में वैज्ञानिक रहे हैं, पर उनकी साहित्यिक अभिरुचि ने उन्हें लेखक, कहानीकार और संपादक के रूप में पहचान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँचाया है। उनकी जो साहित्यिक यात्रा वर्ष 1967 में तब की प्रतिष्ठित पत्रिका "सारिका" में प्रकाशित पहली कहानी "प्रतीक्षाग्रस्त" के साथ शुरू हुई थी, वह अनवरत जारी है। वरिष्ठ साहित्यकार अरविंद जी कहानी-प्रधान पत्रिका "कथाबिंब" के संपादन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। उनके कुशल संपादन में "कथाबिंब" कहानी-क्षेत्र की प्रमुख और लोकप्रिय पत्रिका के रूप में स्थापित हो चुकी है।

कहानी कहना एक कला है। पर, उससे पहले यह विज्ञान इस अर्थ में है कि कहानीकार अपने आसपास के लोगों, घटनाओं और मनोभावों को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, उन्हें आत्मसात् करता है और मनोविज्ञानी की तरह उनका विश्लेषण करता है। फिर तथ्यों और कल्पना का मिश्रण करते हुए वह शब्दों का ऐसा सागर सृजित करता है, जिसकी लहरें मन को स्पर्श करने का माद्दा रखती हैं। अरविंद जी का वैज्ञानिक होना उनके भीतर के कहानीकार को मज़बूत आधार देता है। उनकी कहानियाँ पढ़ते समय इस बात को शिद्दत से महसूस किया जा सकता है कि कहानी कहने के लिए किसी नाटकीय घटना की अनिवार्यता अपरिहार्य नहीं है। एक संवेदनशील और सूक्ष्म दृष्टि रखने वाला कहानीकार किसी साधारण सी बात को भी रोचक कहानी में ढाल सकता है।

जैसा कि इस पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, यह अरविंद जी की चुनिंदा कहानियों का संकलन है। इस संकलन की पहली कहानी "उद्घाटन" ही पाठक को भीतर तक झकझोर कर रख देती है। यह कहानी राजनीति से जुड़े आत्मकेंद्रित और संवेदनहीन लोगों का ऐसा नृशंस और घिनौना रूप उजागर करती है, जिससे पाठक विचलित हो उठता है और उसके भीतर रोष की लहरें उठने लगती हैं। विशेषकर तब, जब वह देखता है कि समाज के कमज़ोर और शोषित वर्गों के लिए काम करने का दंभ भरने वाले लोग ही उनका मानसिक और शारीरिक शोषण करते हैं? यह कहानी वितृष्णा जगाती है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या राजनीतिक स्वार्थ सचमुच इतना नीचे गिरा देता है?

इस संकलन की कहानियाँ "मीन माने मछली", "मेरे हिस्से का आसमान" और "पच्चीसवें माले का फ्लैट" अरविंद जी के विदेश प्रवास के समय के उनके अनुभवों को समेटे हुए हैं। विदेश में अकेले रहते या फिर विभिन्न देशों के लोगों के साथ रहने के दौरान हुए उनके अनुभव जब कहानियों में ढलते हैं तो वहाँ के रहन-सहन, संस्कार, संस्कृति और लोगों की मानसिकता के साथ-साथ उन परिस्थितियों को भी साकार करते चलते हैं, जिनमें रहना होता है।

"मीन माने मछली" कनाडा में प्रवास के दौरान संपर्क में आयी चीनी छात्रा की आर्थिक और मानसिक स्थिति का विश्लेषण करती है। कहानीकार का यह कथन कि "जब भी मीन के बारे में सोचता हूँ तो लगता है सभी मछलियाँ साल्मन नहीं होतीं, कुछ समुद्र की गहराइयों को अपना घर बना लेती हैं" – कहानी के सार को सहज ही सामने ला देता है। "मेरे हिस्से का आसमान" कहानी विदेश में अकेलेपन, अपनी भाषा और अपने भोजन की कमी को तो शिद्दत से रेखांकित करती ही है, क्लबों में अश्लील नृत्य करने वाली कमसिन लड़कियों के बारे में यह सोचने पर मजबूर भी कर देती है कि वे यह सब शौक के लिए करती हैं या फिर मजबूरी और दबाव में। "पच्चीसवें माले का फ्लैट" अमेरिका में प्रवास के दौरान हुए अनुभवों की दास्तान है। इसमें वहाँ समलैंगिक संबंधों की स्वीकार्यता को भी उजागर किया गया है। यह कहानी श्रीकांत से पहले उसी पच्चीसवें माले पर रह रहे उसके दोस्त सुदीप की स्वीमिंग पूल में डूबने से हुई मौत के हादसे की दिल दहलाने वाली याद के साथ संपन्न होती है, जिसे वह तैरना सिखा रहा था।

मुंबई की पृष्ठभूमि और मुंबई की ज़िंदगी पर लिखी पाँच कहानियाँ इस संकलन में शामिल

हैं, ये हैं – "दहशतजदा", "मेरा भारत महान्", "प्रतीक्षाग्रस्त", "समुद्र" और "इत्यादि"। "दहशतजदा" एक ऐसे टैक्सी ड्राइवर की कहानी है जिसकी टैक्सी में बैठकर चार गुंडे एक मकान में पहुँचते हैं और वहाँ एक व्यक्ति की हत्या करके उसी टैक्सी में वापस लौटते हैं। टैक्सी वाला दहशतज़दा है क्योंकि उसे वे लोग यह धमकी देकर गए हैं कि अगर उसने उस घटना के बारे में किसी को कुछ बताया तो उसकी ख़ैर नहीं। यह कहानी बेरोज़गारी के मारे युवकों को माफिया-तंत्र के साथ जुड़ने की मजबूरी पर भी प्रकाश डालती है। "मेरा भारत महान्" लालफीताशाही और उससे उत्पन्न परेशानियों को उद्घाटित करती है। वाल्टर और उसकी पत्नी कैथरीन को एयरलाइन्स का कन्फर्म टिकट लेने के लिए जो पापड़ बेलने पड़ते हैं, उसका जीवंत चित्र इस कहानी में है और पाठक के दिल में लालफीताशाही के विरुद्ध रोष उपजाने में सक्षम है।

"समुद्र" एक ऐसे बेरोज़गार युवक की कहानी है जिसके हर इंटरव्यू के समय पूरे परिवार में एक आशा पनपती है कि इस बार उसे नौकरी अवश्य मिल जाएगी और घर की माली हालत में कुछ सुधार आएगा, पर हर बार निराशा ही हाथ लगती है। इस बार भी इंटरव्यू के बाद निराशा में डूबा वह युवक घर जाने के बजाय समुद्र के किनारे जाकर बैठ जाता है और समुद्र की उठती-गिरती लहरों में अपना ग़म डुबोने की कोशिश करता है। यहीं उसे पेड़ की छाया में सोता वह आदमी दिखाई देता है, जिसकी औरत कचरे में से सामान बीन कर लाती है और उसी से वे जीवन निर्वाह करते हैं। मुंबई में ऐसे लोगों की बेरंग और त्रासद ज़िंदगी का बहुत सजीव वर्णन इस कहानी में हुआ है। कहानी "इत्यादि" मुंबई की भागमभाग, लोकल ट्रेन में चढ़ने-उतरने की जद्दोजहद और विवशता का सजीव चित्रण करने के साथ-साथ मुंबईकरों में घर कर गयी उस परिस्थितिजन्य संवेदनाहीनता को भी उद्घाटित करती है जिसमें ट्रेन से नीचे गिरे आदमी की मौत पर मातम मनाने के बजाय इस बात का मातम मनाया जाता है कि उसकी वजह से यात्रियों को अपने गंतव्य तक पहुँचने में देरी हो रही है। यह कहानी मुंबई की विवशताभरी ज़िंदगी का दर्दभरा बयान है। इस सबके बावजूद मुंबई की ज़िंदगी हारती नहीं, हर बार उठ खड़ी होती है और अपनी गति से चलती रहती है।

मनुष्य की संवेदनशीलता और उसकी स्वार्थपरकता के द्वंद्व को व्यक्त करती कहानी है "आदमी मरा नहीं"। फुटपाथ के किनारे पड़े रहने वाले आदमी के प्रति लेखक की संवेदनशीलता इस कदर बढ़ जाती है कि वह मन ही मन और सपने में उसे शॉल, स्लीपर, स्वेटर जैसी चीज़ें दान देने की सोच लेता है। वह आदमी बहुत दिन तक दिखाई नहीं देता तो यह सोच कर कि वह मर चुका है, उसे लगता है कि अब उसके प्रति उसका कोई दायित्व नहीं बचा है। उस आदमी के साथ उसकी भी मुक्ति हो गयी है। वह यह सोचकर खुश होता है कि जो चीज़ें वह उसे दान में दे देना चाहता था, वे बच गईं। पर, अचानक उस आदमी के फिर से नज़र आने पर उसे यह सोचकर भीतर ही भीतर बेचैनी होने लगती है कि ना तो वह आदमी ख़ुद मरा है और ना ही उसने उसे मुक्त किया है।

"चाँद शास्त्री" कहानी ऐसे चरित्र को सामने लाती है जो मुसलमान होकर भी हिंदू नाम से जाना जाता है और लोगों की सहायता करने को अपना धर्म समझता है। दोनों धर्म के लोगों के बीच सौहार्द्र तलाशती यह कहानी नक्सलवाद के ख़तरे और उससे उत्पन्न डर को भी सामने लाती है। "बीर बहूटी" कहानी के माध्यम से कहानीकार अपने बचपन की यादों को ताज़ा करता है। वह यह सोचकर उदास है कि समय के साथ-साथ उसका अपना कस्बा छूट गया, वहाँ का माहौल और अपनापन छूटा और साथ में छूट गए वे संगी-साथी जिनके साथ मिलकर वह बीर बहूटी ढूँढ़ा करता था। उन यादों को साथ लिये जब बरसों बाद वह वहाँ जाता है तो उसे सब कुछ बदला हुआ लगता है, पहले से बदतर। मन में बसी उल्लास से भर देने वाली कस्बे की वह छवि जब खंडित होती है तो उसके भीतर एक टीस सी उभरती है। उसकी तरह अपना गाँव-कस्बा छोड़कर कहीं और रहने वाला हर पाठक कथाकार की इस मनोदशा से ख़ुद को सहज ही जुड़ा पाएगा।

देश के विभाजन के समय दोनों तरफ के लोगों ने जिस असीम तबाही और दर्द का सामना किया उसने दिलों को हिला देने वाली अनेक कहानियों को जन्म दिया। "हिंदुस्तान /पाकिस्तान" कहानी इस अर्थ में अलग है कि इसमें इस त्रासदी का बयान एक ऐसे पाकिस्तानी सैनिक के जरिये कराया गया है जो घायल अवस्था में भारत की कैद में है। विभाजन से पहले भारत में बिताए अच्छे दिनों को याद करके उसका दिल उदास हो उठता है। उसका यह सोचना वास्तविकता से दो-चार कराता है कि लड़ाई पॉलिटिशियंस कराते हैं और कटते-मरते छोटे लोग हैं चाहे वे मिलिट्री वाले हों या सिविलियन। एक-दूसरे के नागरिकों पर जुल्म ढाने का काम भी उन्हीं के आदेश पर होता है, कोई भी मिलिट्री वाला अपनी मर्ज़ी से यह सब नहीं करता, उसे हमेशा दूसरों के हुक्म पर अमल करना होता है। लड़ाई के दिनों की सोचकर उसका दिल हिकारत से भर जाता है, उसका यह सोचना इस कहानी को ऊँचाइयाँ बख्शाता है कि मज़हब के नाम पर एक नस्ल को ख़त्म करने की कोशिश करना कितना ग़लत है।

"सुरंग" कहानी में सुरंग को प्रतीकात्मक रूप से ऐसे माध्यम के तौर पर प्रयुक्त किया गया है जिसमें घुसकर यथास्थिति से बच निकला जा सकता है। पर, यथास्थिति पीछा नहीं छोड़ती। उससे मुक्त न हो पाने की विवशता इस तरह व्यक्त होती है – "ज़रा गौर करने पर उसने पाया कि ये लोग तो वे ही हैं जिन्हें वह सुरंग में घुसने से पहले छोड़ आया था। कइयों को तो वह चेहरे से पहचानता था। उसे अनुभव हुआ कि वह इन लोगों से मुक्ति नहीं पा सकेगा।" पाठकों को एक ही जिल्द में ये चुनिंदा कहानियाँ पढ़ने का अवसर देने के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। पाठक निश्चित ही इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगे और इनका भरपूर आनंद उठाएँगे।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

नई शुरुआत

समीक्षक : डॉ. डी एम मिश्र

लेखक : कौशल किशोर

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

डॉ. डी एम मिश्र
604 सिविल लाइन, निकट राणाप्रताप पीजी कालेज, सुलतानपुर-228001, उप्र
मोबाइल- 7985934703

भावनात्मक संवेदना का एक नया आगाज़ है काव्य संग्रह 'नई शुरुआत'। कौशल किशोर 'एक्टिविस्ट' कवि हैं। वह कविता लिखते नहीं अपितु कविता जीते हैं। कविता में जो भी वह कहते हैं, उसे करके दिखाते हैं। कविता उनके लिए मिशन और आन्दोलन ही नहीं बल्कि सड़ी-गली व्यवस्था को बदलने का एक औज़ार भी है। वह धूमिल, गोरख पान्डेय जैसे कवियों की परम्परा के कवि हैं। वह कविता में चमत्कार और कलाकारी नहीं करते। भयग्रस्त होकर बात को घुमा फिराकर भी नहीं कहते। इसीलिए व्यंग्यों का प्रयोग भी उनकी कविताओं में कम देखने को मिलता है। वह पीड़ा, घुटन, असंतोष और भूख-प्यास की मिट्टी में जन्मे कवि हैं। 'कवि' कहलाने की लालसा उनके भीतर है ही नहीं। वह अपनी कविता को विज्ञापनों से काफी दूर रखते हैं। वह कहते हैं - 'मेरी पीठ को बना दिया गया/विज्ञापन -प्रचार का सस्ता सा माध्यम/जिस पर चिपका दिये गए/सिनेमा, सर्कस, बाज़ार, सभा के रंग-बिरंगे पोस्टर'

आज जब किसी कवि की दो चार कविताएँ छप जाए तो वह झोला लेकर बाज़ार में घूमने लगता हैं, प्रचार में लग जाता है। बाज़ारवाद के इस दौर में सोचने वाली बात है कि इस पुस्तक ''नई शुरुआत'' की मुख्य कविता जिसका शीर्षक ''नई शुरुआत'' है, वर्ष 1974 की ऐतिहासिक रेल हड़ताल के दौरान लिखी गई थी जो बहुत चर्चित हुई थी और विजय कान्त के संपादन में निकलने वाली अपने समय की अग्रणी पत्रिका 'पुरुष' ने उसे सम्मान से प्रकाशित भी किया था, को पुस्तक के रूप में आते-आते 44 वर्ष लग गए। इस पुस्तक की कविताएँ 1969 से लेकर 1976 के बीच की हैं। यह दौर नक्सलबाड़ी किसान आंदोलन, वियतनामी जनता का मुक्ति संग्राम, बांगला देश के उदय, जे पी आंदोलन, रेल हड़ताल व अन्य जनांदोलनों के साथ इमरजेंसी जैसी तानाशाही का रहा है। कौशल किशोर के कवि की निर्मिति में इसकी भूमिका है। तरुण और युवा कवि जिस आंदोलनात्मक परिवेश व संस्कार में पला-बढ़ा हो वह ग़लत होते देखकर उसे कैसे सहन कर सकता है ? उसका कोमल और भावुक मन चीत्कार कर उठा, ऐसे - 'दादी सुना नहीं तुमने/बाबू जी हड़ताल पर हैं/कन्धे पर यूनियन का लाल झण्डा लिए/ गढ़हरा की रेल-कालोनियों में/घूमते होंगे आजकल/क्वार्टरों से बेदखल करने हेतु/भेजी गई पुलिस लारियों में/कालोनी की औरतों के साथ/अम्मा को भी कैद करके भेजा गया होगा/बहन पूनम और छुटकी भी/जुलूस में शामिल हो नारे लगाती/दादी सुना नहीं तुमने/बाबूजी हड़ताल पर हैं"

इसी 'लाल मिट्टी' की भावनात्मक एवं संवेदनशील उपज हैं कवि कौशल किशोर। इन्होंने अपनी यह पुस्तक भी अपनी दादी, बाबा, अम्मा और बाबूजी की यादों को समर्पित किया है। यह इनकी कविता की दूसरी पुस्तक है। इसके पूर्व इनकी कविता पुस्तक ''वह औरत नहीं महानद थी'' प्रकाशित हुई थी जो ख़ूब चर्चित हुई।

इस पुस्तक पर अपनी बात कहने से पहले मैं कवि कौशल किशोर का आत्मकथ्य आपके समक्ष रखता हूँ - ''हमारे देश की सबसे बड़ी विडम्बना है कि कला और साहित्य को ड्राइंग रूम की सजावट और सुन्दरता की वस्तु में तब्दील कर देने का पुरज़ोर प्रयास किया जा रहा है तथा पूँजीवादी व्यवस्था के कलात्मक व साहित्यिक प्रतिमानों को ही सच्चा और वास्तविक प्रतिमान बताया जा रहा है। यह किसी साजिश से कम नहीं।'' मैं इससे सहमत हूँ। आज की जनविरोधी सरकारें तो यही चाहती भी हैं कि कवि और लेखक सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ कुछ न लिखें और लिखें भी तो ऐसी भाषा और कलात्मक भंगिमा का प्रयोग करें कि लोग उसे पढ़ें ही नहीं और पढ़ें तो समझ न पाएँ। इन्हीं कवियों/लेखकों को बढ़ावा देने के लिए आज सरकारी संस्थानों द्वारा पुरस्कृत भी किया जा रहा है। ऐसे कवियों/लेखकों का एक बड़ा गुट भी

बन चुका है जो आपस में एक दूसरे की सराहना करते अघाता नहीं। ऐसे रचानाकार प्रायोजित तौर पर ''वैचारिक संवेदना'' अथवा ''कलात्मक संवेदना'' का पाठ जनता को पढ़ा रहे हैं। लेकिन स्पष्ट रूप से मैं कहूँगा कि जो रचना जनहित में नहीं उसमें संवेदना कहाँ से हो सकती है। कौशल किशोर की इन पक्तियों पर ग़ौर फ़रमाएँ - 'आओ दे दें अपनी कविताएँ/उनके हाथों में/जिनके लिए सही अर्थों में/कविताएँ होनी चाहिए'

और ये पंक्तियाँ भी देखें - 'मेरी कविता में पैदा हो रहा है/एक नया आदमी/और वह/इस धरती पर हो रहे/हर नए आदमी को करता है सलाम/लाल सलाम!'

कौशल किशोर मूलत: प्रतिपक्ष के कवि हैं। उनका पक्ष स्पष्ट है कि वह किसके पक्ष में रचते हैं। उनकी कविता एक ख़ास तरह की कशमकश, एक ख़ास तरह के द्वंद्व की सृष्टि करती हैं। उसमें एक नए संसार के तलाश की छटपटाहट और बेचैनी हैं। किसान, मज़दूर, सर्वहारा उनकी इस संवेदना के केन्द्र में है। समाज के कमज़ोर व्यक्ति को वह कमज़ोर तो मानते हैं पर, मजबूर नहीं। उनका मानना है जब तक शरीर में प्राण है तब तक चेतना है और जब तक चेतना है तब तक - 'मैं युद्ध करता हूँ/हरवा -हथियारों से/हसिया-हथौड़ों से/खुरपी-कुदालों से/लाठी- भालों से/मैलट-हैमरों से जारी है, जारी रहेगी यह जंग/रात के ख़िलाफ़ नई सुबह होने तक'।

कवि यथार्थवादी है तो आशावादी भी, संघर्षशील है तो शांतिवादी भी। लेकिन उसे विश्वास है कि उसकी हस्ती मिटने वाली नहीं। वह चुप भी हो जाय तो उसका मौन बोलेगा। वह कहता है - 'किसी चौराहे की पत्थर की मूर्ति/या कैलेण्डर की रंगीन तस्वीरों की तरह/मुझे मौन रहने दो' 'पर्दे के पीछे/खन्दक खोदे जा रहे हैं/सुरंगें बिछाई जा रही हैं'।

हृदय की गहन अनुभूतियाँ, वैचारिक मन्थन और कल्पना का अनुरंजन ही कविता है। कवि की अनुभूतियाँ जितनी सान्द्र होंगी और वैचारिकी जितनी परिपक्व होगी कविता उतनी बड़ी और प्रामाणिक होगी। समकालीन कविता मनमौज या दिल बहलाने की चीज़ नही हैं। उसका प्रयोजन हस्तक्षेप करना और बेहतरी का मार्ग प्रशस्त करना है। बाज़ारवाद और भूमंडलीकरण के पूँजीवादी चरित्र ने मध्यवर्गीय जीवन को अपना शिकार बनाया है। मनुष्य समाज में जी रहा है मगर मुखौटा लगाकर जीने को अभिशप्त हैं। नवउदारवादी आर्थिक बाज़ार ने समाज को एक छद्म रूप दे दिया है। कवि कहता है -

'घर से बाहर निकलना मुश्किल/बहुत-बहुत मुश्किल जो जाया करता है/ और सच्चाई शायद/जलती ज़मीन से भी कहीं ज़्यादा/उष्ण हुआ करती है/चेहरे असलियत के साथ गुज़रते हैं/और मुखौटे/पसीने के साथ उतर जाया करते हैं'।

यह कृति समाज में व्याप्त कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों की पहचान करने में सफल हुई है। कवि ने ख़ुद स्वीकार किया है मेरे साथ जो युवा पीढ़ी साहित्य के क्षेत्र में आई, उसने अपने हृदय में न तो कोई सपना ही सँजोया था और न किसी प्रकार का मोह या भ्रम ही पाल रखा था। हमारी पीढ़ी ने बेकारी, मँहगाई, भ्रष्टाचार, नौकरशाही, पुलिसशाही, धूर्त राजनीति आदि-इत्यादि की त्रासद स्थितियों से घिरा हुआ पाया। ग़रीबी, भुखमरी और अकाल जैसी त्रासदियों के पहाड़ के नीचे पिसती-कराहती जनता का वीभत्स रूप देखा है। कवि कहता है - 'पेट में दर्द/भूख से अँतड़ियों में ऐंठन/तुम महाराणा के कैसे वंशज हो'

और यह भी- 'जी हाँ मैं भूख नहीं/भूख का इलाज हूँ/मैं बीमारी नहीं/बीमार का डॉक्टर हूँ/मैं विकट परिस्थितियों से हार कर/भागकर/आत्महत्या का निष्कर्ष नहीं हूँ/जो लोग पूरी दुनिया में/भूख, बीमारी और आत्महत्या का सौदा करते हैं/उन्हीं के खिलाफ़ एक आवाज़ हूँ मैं/इन्कलाब हूँ मैं !' बिल्कुल उनके ख़िलाफ़ मोर्चे पर डटा है कवि - 'जो रात भर तेज़ाब फेंकता है/गहन अँधेरा/षड्यंत्रों का खेल खेलता है'।

कवि सियासत के खूनी खेल से अच्छी तरह वाकिफ है। वह जानता है हमारे देश में कहने मात्र को लोकतंत्र है, वरना चारों तरफ केवल लूटतंत्र का बोलबाला है। ग़रीब और मेहनतकश जनता के पसीने की कमाई चोर-लुटेरे ही नहीं सरकारें भी तरह-तरह के हथकंडे डालकर लूट रही है। किसान आत्महत्या करने को विवश हो रहा है। देश की आधी जनता को दो जून की रोटी नसीब नहीं। चारों तरफ अराजकता का नंगा नाच हो रहा है। ''कहीं ऐसा न हो'' शीर्षक कविता में कवि ने अपनी आवाज़ को बड़े ज़ोरदार ढंग से बुलंद किया है। वह बापू को साक्षी मानकर कहता है - 'बापू/कहीं ऐसा न हो/तुम्हारी मूर्तियों पर मैं भी न फेंकने लगूँ/बम सोडावाटर की बोतलें/या तुम्हारी मूर्तियाँ टूटती रहें/और मैं किसी कोने में खड़ा/निर्निमेष देखता रह जाऊँ'। कवि का अब लोकतंत्र पर से भी विश्वास उठ रहा है। वह कहता है - 'धुंध भरे चौराहे पर/प्रजातंत्र मेरे पेट में घोप देता है/राष्ट्रीयता और देशभक्ति का का एक तेज़ छूरा' क्योंकि कवि इस सत्य को भी जानता है और ''वे'' शीर्षक कविता में व्यक्त करते हुए कहता है - 'वे मारते हैं/वे सच को मारते हैं/वे मारते है/वे विचार को मारते हैं'। कवि जानता है कि यदि किसी को नेस्तनाबूद करना है तो पहले उसके 'सच' और 'विचार' का वध कर दो। वह ख़ुद ब ख़ुद नष्ट हो जाएगा।

यह संग्रह कान्तिकारी रचनाओं से भरा पड़ा है। सबसे अच्छी बात कि इन परिस्थितियों में भी कवि की सोच नकारात्मक कतई नहीं है। वह भी देश में हो रही प्रगति और उपलब्धियों को स्वीकार करता है। लेकिन वह इससे तब तक संतुष्ट नहीं, जब तक इस देश की एक बड़ी आबादी बेरोज़गार और अशिक्षित है। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से इस दिशा में पहल करता है और स्वीकार करता है कि विकास का सारा दावा तब तक झूठा है जब तक इस देश में सही अर्थों में समाजवाद नहीं आ जाता। कवि तमाम शंकाओं के बावजूद ग़लत के ख़िलाफ़ संघर्ष और बेहतरी की उम्मीद नहीं छोड़ता, इन पंक्तियों के बीच से गुज़रते हुए -- ''वे दर्ज होगे इतिहास में/पर मिलेंगे हमेशा वर्तमान में/लड़ते हुए/और यह कहते हुए कि स्वप्न अभी अधूरा है'।

000

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

साहित्यिक परंपरा एवं आस्वाद

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : गोविन्द गुंजन

प्रकाशक : के.एल. पचोरी प्रकाशन, गाजियाबाद

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी आनंद नगर खण्डवा, मप्र 450001
मोबाइल- 8989423676,
ईमेल- ss180258@gmail.com

साहित्य की परंपरा अत्यंत सुदीर्घ है। साहित्य की इस सुदीर्घ परंपरा में असंख्य उज्ज्वल नक्षत्रों की प्रकाशाभा है, जो कदम-कदम पर हमें सहारा देती है। साहित्य का आस्वाद आत्मा को संतुष्टि देता है। इस यात्रा का अपना सुख है तो कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। ये कठिनाइयाँ साहित्य की नहीं हमारी समर्थता की सीमा की हैं।

"साहित्यिक परंपरा एवं आस्वाद" एक ऐसी किताब है जिसमें लेखक की लंबी साहित्यिक यात्रा के कुछ ऐसे पड़ाव हैं जहाँ रुककर पाठक को घनीभूत अनुभूतियों से गुज़रना सुखदायक प्रतीत होता है।

किताब के पाँच खंड हैं। खंड एक में विद्यापति, कबीर, तुलसी की मानस का उत्तर कांड, तुलसी का सामाजिक बोध, तुलसी के राम, भक्ति काल की सहजोबाई, सेनापति, रीति कालीन कवि देव, मध्यकालीन काव्य में बाज़ार, राजशेखर की कर्पूर मंजरी, यह दुनिया एक रंगमंच में शेक्सपियर शामिल हैं। इन सभी पर प्रथम खंड समृद्ध और कीमती लेख हैं। यह सभी आलेख साहित्य की इन विभूतियों पर गंभीर मनन, चिंतन और लेखक के अपने विचारों का परिणाम है। सच कहा जाए तो यह भारतीय एवं विश्व दर्शन और साहित्य के गहन अध्ययन का सुपरिणाम है जो विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर अब किताब में ढलकर हमारे हाथों में आए हैं।

विद्यापति के काव्य में ललित विधान और सौंदर्यबोध में लेखक गोविन्द गुंजन लिखते हैं कि पंद्रहवी सदी में जन्मे मैथिल कोकिल विद्यापति की नायिका कृष्ण के प्रेम के पीयूष में "आकंठ" निमज्जित है। अपने प्रियतम के सौंदर्य का अनुभव उसे शब्दातीत लगता है। जिसे नायिका वर्णित

नहीं कर सकती है उसे विद्यापति कह देते हैं। विद्यापति क्षण की महत्ता को जानते हैं। इसीलिए उनका सौंदर्य बोध इतना गहरा है। इस सौंदर्य से परिपूर्ण क्षण की तीव्रता, तेज और समृद्धि इतनी विराट् है कि उसमें अनंतकाल की कथा समाहित हो सकती है। हमारे सीमित और छोटे हृदय में वह चिर असीम सौंदर्य समा नहीं सकता किन्तु उस उस चिर असीम सौंदर्य में वह हृदय पूरी तरह डूब अवश्य सकता है।

विद्यापति को लेकर किये गए इस मनन को, मीमांसा को लेखक अपने चिंतन और अपने अर्थ भाष्य से लिखते हैं। ये शब्द किसी और किताब से नहीं आए हैं, बल्कि यह उनकी अध्ययन क्षमता का सत कहा जाना चाहिए।

कबीर मंशूर : उर्फ कबीर की पैग़म्बरी और उसके निहितार्थ लेख बिल्कुल अलग दृष्टिकोण से कबीर को परखा गया आलेख है। कबीर पर इतनी विस्तृत और एकीकृत सामग्री अन्यत्र आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं। इसमें लिखा है कि कबीर मनुष्य की मूढ़ताओं, कुरीतियों, प्रथाओं सामजिक अंधविश्वासों से मुक्ति का रास्ता बनाने वाली क्रांति को जन्म देना चाहते थे। इस्लामी क्रूर घटनाओं के विश्लेषणों से कबीर मंशूर ने मुस्लिमों को यह समझाने की कोशिश की थी कि मूर्तिपूजा उनके पूर्वजों की परम्परा रही है। यह कुफ्र नहीं है। इस आधार पर किसी पर अत्याचार नहीं होना चाहिए।

"कबीर मंशूर" में अनेक कबीर ग्रंथों का समावेश है जो देश में हिंदू-मुस्लिम-साम्प्रदायिकता के विरुद्ध समन्वय और एकता के बेमिसाल उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

तुलसीदास जी की रामचरित मानस के उत्तरकांड, तुलसी का सामजिक बोध, तुलसी के राम यह तीनों अध्याय लेखक की ऐसी उपलब्धि है जिसकी प्रसंशा मुक्तकंठ से होना चाहिए। उत्तरकाण्ड पर जो अध्याय है उसे गुजरात विश्वविद्यालय ने हिन्दी साहित्य उत्तरार्ध के छात्रों के लिये आधार पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकृत कर अपने सिलेबस में शामिल करने का निर्णय लिया है। योजना है कि इस अध्याय को किताब का रूप दिया जाए, निश्चित ही गोविन्द गुंजन की यह उपलब्धि किसी सम्मान से कम नहीं है।

उत्तरकांड का काव्य स्वरूप, उसका छंद विधान एवं भाषा के अंतर्गत सोरठा छंद, चौपाई छंद, दोहा, हरिगीतिका छंद, चौपैया छंद, त्रिभङ्डी छंद, तोमर छंद, संस्कृत के वर्णिक छंदों का प्रयोग, अनुष्टुप छंद, शार्दुल्विक्रीडित छंद, वसन्ततिलका छंद, वंशस्य छंद, उपजती इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा छंद, प्रामाणिकाछंद, मालिनी छंद, स्त्रग्धरा छंद, रथोध्द्त छंद, भुजंगप्रयात छंद की परिभाषा उदहारण सहित प्रस्तुत की गई है। यह सारे छंद तुलसीदास जी की मानस के लेखन में प्रयुक्त हैं। यह है भी विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों के अध्ययन के लिये उपयुक्त अध्याय।

तुलसी का भाषा वैभव, मुहावरे लोकोक्तियों एवं सूक्तियों का प्रयोग, उत्तर कांड का वस्तु विधान, उत्तर कांड के प्रमुख पात्र एवं कथा प्रबंधन, रामराज की संकल्पना, उत्तरकाण्ड में तुलसी का समकाल इतने सारे विषय इस एक अध्याय में शामिल हैं। 43 पृष्ठों में तुलसीदास जी के लेखन की बारीकियों, तुलसी-काव्य की विशेषताएँ, छंद विधान से लेकर तुलसी के राम तक का अध्ययन अत्यंत कीमती है। वे लिखते हैं कि मानस का काव्य पक्ष इतना समृद्ध है कि उनका प्रभाव हृदय पर गहरे तक पड़ता है। इसी प्रकार लाक्षणिकता भी तुलसी की भाषा शक्ति है। जहाँ अभिधा शक्ति बाधित होती है, वहाँ लाक्षणिकता का जन्म होता है। तुसली को यद्यपि काव्य शास्त्र के विविध अंगों एवं उपांगों का पूर्ण ज्ञान था, तथापि वे उसका प्रयोग किसी प्रकार के अनुचित प्रदर्शन हेतु नहीं करते हैं। भाषा, भाव उद्देश्य, कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, प्रकृति वर्णन सभी अपने उत्कृष्ट स्वरूप में मानस में देखे जा सकते हैं। लोकमंगल की भावना उनके सामजिक एवं राजनैतिक विचारों के साथ-साथ उनके जीवन दर्शन की आधारशिला बनी है अत: हम उत्तरकाण्ड को यदि मानस मन्दिर का पियूष भरा शिखर कलश कहें तो अनुचित नहीं होगा।

जिस तरह गुजरात विश्वविद्यालय में इस अध्याय को हिन्दी के सिलेबस में शामिल करने का निर्णय लिया है, वैसे ही पूरे देश में यदि इसे शामिल किया जाए तो काव्य और तुलसी काव्य के सभी आयामों का अध्ययन छात्रों के लिये अत्यंत उपयुक्त होगा। यह अकेला अध्याय वर्तमान काव्य की दशा और दिशा दोनों का मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ है, सक्षम है।

सोलहवीं सदी एक विलक्षण सदी है। इस सदी में महानतम प्रतिभाएँ विश्व के रंगमंच पर अवतरित हुई थीं। इंग्लैंड में यह समय शेक्सपियर का युग है, तो भारत वर्ष में जायसी, सूरदास, तुलसीदास जैसी महान् प्रतिभाओं का भी यही समय रहा है। इतिहास का यह कालखंड स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित और अमर है।

बाज़ार में आजकल किताबें मिलती नहीं हैं। प्रकाशक दूर हैं तो अच्छी किताबें प्रिंट के बाहर हो चुकी हैं। पाठकों का घोर अकाल जैसी स्थिति है। ऐसे में सुधि पाठक यदि शेक्सपियर को पढ़ना चाहे तो उसके लिये किताब जुटाना मुश्किल ही नहीं अपितु जटिल कार्य होगा। ऐसी स्थिति में शेक्सपियर के लेखन पर सम्पूर्ण अद्यतन और उनका सम्पूर्ण अवदान पढ़ने को मिले तो यह पाठक की एक सुविधाजनक उपलब्धि होगी। इस लेख में शेक्सपियर के सम्पूर्ण लेखन के बारे में महत्त्वपूर्ण भाष्य हैं या यूँ कहें कि शेक्सपियर के लेखन का जीस्ट है। उनके लेखन को लेकर गोविंद गुंजन लिखते हैं शेक्सपियर समग्र जीवन के महाकवि हैं, अत: जीवन में जो कुछ भी अच्छा और बुरा है, वह सब शेक्सपियर में है।

जीवन का सौंदर्य, प्रेम की प्रबलता, घृणा का तूफान, महत्त्वाकांक्षाएँ, राजनीति तथा शोषण के असंख्य चित्रों के साथ वह जीवन का विशाल कोलाज रचते हैं। वह हमारे भ्रमों को दूर करते हैं और असली और नकली के बीच हमारी पहचान करने की शक्ति को विकसित करते हैं। वह मानवीय विवेक को

विकसित करने वाले सत्य की सुंदरता को उद्घाटित करने वाले महाकवि हैं। शेक्सपियर के नाटकों के माध्यम से हम जीवन के गहरे यथार्थ से रू-ब-रू होते हैं और वह हमें एक ऐसा आईना दिखाते हैं, जिसमें हमें अपनी ही वह सूरत नज़र आती है, जिसे हम कभी पहचान नहीं पाते। शेक्सपियर पर लिखा गया यह अत्यंत मूल्यवान् आलेख हमें शेक्सपियर को पढ़ने की तमीज़ और समझने की दृष्टि प्रदान करता है।

खंड दो "अविराम सर्जना के क्षितिज" शीर्षक से है जिसमें राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, कुबेरनाथ, गुरुवर रविन्द्र नाथ टैगोर तथा अल्बर्ट आइंस्टीन का दुर्लभ संवाद, शिवमंगल सिंह सुमन, रामनारायण उपाध्याय के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण आलेख "आज़ादी के बाद की हिन्दी कविता" शामिल है।

कुबेरनाथ राय को लेकर ललित निबंध तथा भारतीय आर्ष चिंतन परंपरा पर लंबी बातचीत और चिंतन है। यह लेख ललित निबंध की परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है, जिसमें आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी, विद्या निवास मिश्र के साथ ही अन्य निबंधकारों की बात करते हुए कुबेरनाथ राय के सम्पूर्ण लेखन का आकलन किया गया है। स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कविता में कविता की पूँजी और उसका अर्थशास्त्र, कविता की धन उत्पादक शक्ति और बाज़ार, शैली का व्यक्तित्व और व्यक्ति की आत्मा तथा धन से कविता नहीं मिलती विषयों पर तथ्यपरक विचार प्रस्तुत हैं।

तृतीय खंड "अनुचिंतन" में गोविन्द गुंजन का चिंतन तथा कुछ निबंध संकलित हैं। वाल्मीकि पर चिंतनपरक लेख में वे लिखते हैं कि वाल्मीकि की चेतना बहुत विराट् है। उनकी सामजिक चेतना सीमित अर्थों वाली नहीं, वरन समस्त प्रकृति और समस्त पृथ्वी की विराट् सामाजिकता है। करुणा, प्रेम, त्याग, शील का केवल आदर्शीकरण नहीं, व्यव्हारीकरण है। उनका काव्य भारतीय संस्कृति का स्वर्णिम अध्याय है जो सम्पूर्ण मानवता का इतिहास बन गया है।

खंड चार में विभिन्न कृतियों तथा कृतिकारों पर समीक्षात्मक आलेख हैं जिनमें डॉ. श्याम सुन्दर दुबे, देश के समृद्ध ललित निबंधकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, कवयित्री क्रांति कनाटे, व्यंग्य लेखक कैलाश मंडलेकर, नवगीतकार रघुवीर शर्मा, निमाड़ी के वरिष्ठ कवि गेंदालाल जोशी 'अनूप', शायर, कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार हबीब कैफी, उपन्यासकार विष्णु नागर, कवि कुँवर नारायण, एमिली डीकिन्सन की कविताएँ, उपन्यासकार डॉ. निशिकांत कोचकर, गीतकार प्रदीप नवीन की कृतियों पर समालोचनाओं के अतिरिक्त रविन्द्र नाथ टैगोर की गीतांजलि पर विचारपरक सुन्दर और महत्त्वपूर्ण आलेख हैं।

अंतिम और पाँचवा खंड – विविध शीर्षक से है। इस खंड में भी ऐसी सामग्री है जिसे बिना पढ़े नहीं रहा जा सकता। साहित्यिक सन्दर्भ में समकालीनता और प्रासंगिकता का प्रश्न, समकालीन कविता के सन्दर्भ में सृजन की सार्थकता, भीम बैटका और इतिहास की इन्द्रधनुषी धूप-छाँव पठनीय लेख हैं। कला पर प्रियेश दत्त मालवीय का धुँए से उकेरे गए चित्रों का आकलन, वो किताबों के दिन, फ़िल्मी गीतों से आगे की देशभक्ति और अंत में लेखक की डायरी के अंश "मन के प्रतिबिम्ब और सोच के उभयदंश" शीर्षक से हैं।

"साहित्यिक परंपरा और आस्वाद" ऐसा दस्तावेज़ है जिसे पढ़ना नए अनुभवों और अनुभूतियों से गुज़रना है। इस किताब के सभी लेख उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ तो ऐसी दुर्लभ सामग्री है जिसे आसानी से पा लेना कठिन होता है। यह किताब आपको पूरी रोचकता से समृद्ध करती चलती है। जो हम पढ़ नहीं पाये उसे जान लेते हैं और जो पढ़ चुके उसे नविन कोणों से देख पाते हैं। जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक, बहुत सारे सच इस किताब में हैं, इनसे होकर एक बार अवश्य गुज़रना चाहिए।

000

नई पुस्तक

(ग़ज़ल संग्रह)

देखा सा मंज़र

लेखक : गोविंद सेन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

गोविंद सेन की ग़ज़लों का संकलन है यह संग्रह देखा सा मंज़र, जो शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। आशीष दशोत्तर इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- हिन्दी ग़ज़ल को लेकर अपने अलग अंदाज में बात करने वाले शायर श्री गोविंद सेन हैं। उनकी ग़ज़लें बहुत सीधी भाषा, सामान्य जन की समझ आने वाली शैली में उतरती है। गोविंद सेन अपनी ग़ज़ल में वर्तमान विषमताओं को तो उजागर करते ही हैं साथ ही विसंगतियों पर कटाक्ष भी करते हैं। ग़ज़ल के नए रंग, नए अहसासात के बारे में गोविन्द सेन गहरी बातें भी कहते हैं। ग़ज़ल का आवरण समय के साथ बदलता रहा लेकिन उसकी बनावट, उसका स्वरूप, उसका शब्द- संयोजन, उसका छांदिक अनुशासन वही रहा। आज भी ग़ज़ल एक निश्चित स्वरूप में बंधी हुई है। इस अनुशासन में रहकर ग़ज़ल अपनी छवि को और अधिक निखार रही है। गोविन्द सेन की ग़ज़ल इसकी ताईद करती है। इस संग्रह में शामिल गोविन्द सेन की ग़ज़लें इस लिहाज से काफी उम्मीदें जगाती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

खिड़कियों से झाँकती आँखें

समीक्षक : बी. एल. आच्छा

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

बी. एल. आच्छा
फ्लैट - 701, टॉवर- 27
नॉर्थ टाऊन स्टीफेंशन रोड
पेरंबूर चेन्नई(टीएन)
पिन- 600012
मोबाइल- 9430145930
ईमेल- balulalachha@ yahoo.com

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' सुधा ओम ढींगरा की कहानियों का संग्रह मात्र नहीं है। इन खिड़कियों से झाँकती आँखें जितनी पार द्वार की प्रवासी दुनिया से मिलाती हैं, उतना ही भारतभूमि के खुरदुरे यथार्थ से भी। एक तरह से ये वे लहरें हैं, जो अटलांटिक से हिंदमहासागर तक एक प्रवासी कथाकार की संवेदना को जोड़ती हैं। यह विस्तार जितना धरातलीय है, उतना ही संवेदनात्मक। जितना स्पर्शिल है, उतना ही जड़ताओं का प्रतिकार करते उदात्त सोच का। हर कहानी जितना यथार्थ रचती है, उतनी ही आंतर वेदना भी। हर कहानी का अपना कोण है और अक्सर यह बुनावट कई भ्रमों को, कई कठोरताओं को, कई विभेदों को तोड़ती हुई इन ज़मीनों की संस्कृतियों की, जातीयता की संकरीली राहों की सच्चाई बयाँ कर जाती है। इनमें ज़िंदगी का गद्य चट्टानों सा पसरा है, मगर मनोभूमि कविता की सी संवेदनात्मक लय इन चट्टानों से टकराती नज़र आती है।

इन कहानियों में किस्सागोई तो पूरे बॉडी स्केल्टन की तरह है, पर उसके भीतर की माँसपेशियों की धड़कन पाठकों में तरल भूमियाँ रचती हैं। प्रवासी दुनिया की सच्चाइयाँ हैं, तो अपने ही आँगन की सच्चाइयों से तिड़कता मन भी। एक गहरा रक्त संचार है, जो विदेश में रहते हुए देशी आँगन से धड़कता है और अपने घर के आँगन के खुरदुरेपन से छिलते हुए प्रवासी संसार में लौटता है। और इन दोनों दुनियाओं को, दोनों पारिवारिक आँगनों को, दोनों तरह की जीवन राहों को, अतीत और वर्तमान से इस तरह जोड़ता है कि फ्लैशबैक और आज का परिदृश्य बड़ी पटकथा बुन देते हैं। इस लिहाज से कथा -विन्यास, फ्लैशबैक का शिल्प, नाट्यपरक दृश्यात्मकता, कविता की सी संवेदनात्मक अनुभूति और सँकरीली राहों को तोड़ती -तरल बनाती वैचारिकता अपनी बुनावट से पाठक को सहयात्री बना लेती है।

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' कहानी जितनी फ़ोटोग्राफिक है, उतनी ही तरलता से भीगी हुई। इन आँखों में बहुत गहरे सच का प्रतिबिंब दिखता है। उम्रदराज़ लोगों के जीवन में पसरी एक आस भी। यही आस बूढ़ी आँखों में चिपक जाती है, किसी युवा डॉक्टर को देखकर। इन दंपतियों के वीराने की दुनिया में पुत्रों का सा स्नेह संचार हो जाता है। इसलिए भी कि ये दंपति सांस्कारिक कट्टरताओं में न केवल अपनी संततियों से छिटक गए हैं, बल्कि अपने ही देश के परिवेश में भी बेगाने से रहे। और प्रवासी दुनिया में लौट कर रिश्तों से बेख़बर हैं। प्रवासी जीवन का पारिवारिक समाजशास्त्र उन सच्चाइयों से रू-ब-रू कराता है, जिसके वीराने में आँसुओं की तरलता मातृत्व- पितृत्व उड़ेल देती है। इस कहानी में कई कठोर परतें हैं। पैसे के लिए भारतीय डॉक्टर का सपना, जो भारत में अपने परिवार को खुशहाल रख सके। विदेश में भारतीय दंपतियों की कट्टर पारंपरिक सोच 'जो विदेशी बहू के लिए बेटे की ज़िद से टकराकर इतना दूर हो जाता है कि फ़ोन ही डिस्कनेक्ट नहीं होता, जैविक रिश्ता ही डिस्कनेक्ट हो जाता है। भारतीय और विदेशी संस्कारों की टकराहट के ये परिदृश्य इतने गीलेपन से बुने गए हैं कि कठोर परतों में भीतर की उदास नमी रह रह कर रिश्तों में छलक जाती है। आत्मीय सहारे की तलाश करती ये आँखें अपने सूनेपन में न जाने कितने दृश्य- संवाद रच जाती हैं।

'वसूली 'कहानी तो विदेशी पुत्रवधू के मन में भारतीयता और पारिवारिक समृद्धि के मोह में रंगी भावुकता का छटपटाता परिदृश्य है। किरदार प्रवासी हैं, पर सारी उलझनें भारत के परिवार की। एक लंबा कालमान है, सारी आर्थिक दुश्वारियों में विदेश में छलाँग लगाते पुत्र के जीवन का, जो माता-पिता के संतप्त जीवन को खुशियों में भरना चाहता है। पर दोनों महाद्वीपों के बीच यह पारिवारिक समुद्र का खारा पानी ऐसा फ्लैशबैक रचता है कि दिल और दिमाग़, भावना और विवेक का द्वंद्व, रिश्तों के साथ मन को छलनी कर देता है। स्मृतियाँ और वर्तमान, फ्लैशबैक और चरमराती पारिवारिकता, देश और विदेश के जीवन मूल्यों की भ्रांतियाँ इस तरह सामने

आती हैं कि बचपनिया रिश्ते उखड़ कर केवल भौतिक कब्जों में तब्दील हो जाते हैं। प्रवासी भावुक स्मृतियाँ और देश में अपने ही पारिवारिक आँगन के दंश कूट स्वार्थों की नागफनियाँ उगा जाते हैं।

'एक ग़लत कदम' कहानी संस्कारों की जड़ता को जितना तोड़ती है, उतनी ही विदेशों में पारिवारिक रिश्तों के प्रति भारतीय मानस की ग्रंथियों से परदा भी उठाती है। शुक्ला परिवार का सजातीय बहू लाने का दुराग्रह अपने पुत्र से ही उन्हें दूर कर देता है। पर अपने अन्य दो पुत्रों के सजातीय विवाहों के बावजूद उनसे छिटकाए जाने पर इसी वृद्ध युगल को विजातीय बहू जेनेट पूजा की थाली से अपने घर में प्रवेश करवाती है। अमेरिकन समधी परिवार की टूटी-फूटी हिन्दी तथा भारतीय रिवाजों से लबरेज़ स्वागत अभिभूत कर देता है। संस्कृतियाँ टकराती हैं, उनका मनोविज्ञान जटिल होता है। पर वे मेल सिखाती हैं, तो सारे रंग उजली आत्मीयता से गाढ़े हो जाते हैं। सजातीय दांपत्य और विजातीय दांपत्य के समांतर विन्यास में लेखिका सांस्कृतिक - पारंपरिक ग्रंथियों और मिलाप की उदात्त भूमियों को गहरी अर्थवत्ता दे जाती है।

'ऐसा भी होता है' पत्रात्मक शैली की कहानी है। प्रवासी बेटी अपने ससुराल में जी-तोड़ मेहनत से कमाती है। पर देश में पिता उसकी भावुकता का फायदा लेते हुए अपने बेटों के लिए धन उलीचना चाहते हैं। यह कसकता हुआ बेटी का स्वर है, जो अब सतर्क सवाल करता है पिता से। उन सारी परतों को उखाड़ता है, जो बेटे और बेटी की परवरिश में फर्क और बेटों के प्रति अंध ममत्व को सवालिया बना देता है। ख़ासकर तब जबकि बेटी के ससुरालवाले उसके पीहर की कठिनाइयों को भी साझा करते हैं।

'कॉस्मिक की कस्टडी' जितनी कौतूहलमयी कहानी है, उतनी ही विदेशी ज़मीन पर पारिवारिक रिश्तों की टकराहट, रिश्तों के अकेलेपन और उनके उलझाव में भी रिश्तों के गीलेपन की। अकेलापन विधवा माँ का भी है और दूरतर काम करते बेटे का भी। और दोनों कॉस्मिक डॉगी से ही इस अकेलेपन को तोड़ना चाहते हैं। प्रवासी दुनिया में इस छिटकी हुई पारिवारिकता के बीच डॉगी की पारिवारिक जैविकता का एहसास मूल्यपरक बना है। कानूनी सी बहसों में माँ और बेटे के रिश्तों में छलकता संवेदन, तब और विशिष्ट बन जाता है, जब विदेशी ज़मीन पर फैमिली कोर्ट के भारतीय एडवाइजर के देशी मन पर ये संवाद उत्कीर्ण से होते चले जाते हैं।

'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' कहानी में न भारत अलग है,न अमेरिकी जीवन। ये प्यार के रंगों में इकसार होना चाहते हैं। पर नस्लवाद का रंग कंज़र्वेटिव, सनकी, रूढ़िवादी नज़रिए उस अवसाद को ले आते हैं, जहाँ विजय और जेनेट की ज़िंदगी स्वाहा हो जाती है। एक दकियानूसी रंगभेदी पॉलीटिशियन की बेटी से जेनेट से विजय का प्यार अमेरिकी रंगभेदी राजनीति का काला अध्याय बन जाता है। कहानी इस ख़ूबसूरती से गढ़ी गई है कि एयरपोर्ट के लिए कार यात्रा में पात्रों के संवादों के बीच नाटकीय और कौतूहलमय परिदृश्य खुलते चले जाते हैं। विजय के भाई द्वारा दिया गया पत्र जस का तस रह जाता है, क्योंकि विजय अवसाद से और जेनेट कार एक्सीडेंट में पहले ही धरती छोड़ गए थे। अमेरिका और भारत के समाज को यह कथा विन्यास इतना आमने-सामने रख देता है कि सारा जातिवादी अंतर्जाल रेशा-रेशा बाहर आ जाता है। जातिभेद के ऊँचे-नीचे के पहाड़ी टीलों के सामने एक समतल समाज अमेरिका का है। मगर वह भी नस्लभेद का शिकार।

'अँधेरा उजाला' प्रवासी ज़मीन पर स्मृतियों का संसार ही नहीं लाती, बल्कि अपने देश के कलाकारों के स्वागत में देसी रंगों की आत्मीयता में खिल जाती है। एक लंबे कालमान पर पसरी इस कहानी में भारतीय समाज में ऊँच-नीच के रंग कितने भेदपरक हैं। अस्वच्छ जाति के गायक मनोज पंजाबी के परिवार के स्पर्श से जितनी दूरी रखी जाती है, शोहरत मिलते जाने पर इन दूरियों का नए सदस्यों में विरोध। लेकिन मनोज पंजाबी की कंठ लय जब अमेरिका में थिरकती है तो कथाचक्र फिर फ्लैशबैक में। जातीय संकीर्णता के बेरंग रंगों में उजलापन भरते ये पात्र जितनी सहृदय ज़मीन बनाते हैं, विदेशी ज़मीन पर भी कितने षड्यंत्र के शिकार हो जाते हैं। दिलचस्प मोड़ वाली इस कहानी में जातीयता का समाजशास्त्र और उसकी परतों को हटाता नया सोच रह-रहकर झलक दे जाता है।

'एक नई दिशा' कहानी का अलग ही कोण है। अमेरिका में कानूनों का चौकस जंगल भी है और तमाम मशीनी निगरानियों के कर्मचारियों का आला अंदाज़ भी। मगर इन्हीं में वह चौकसी भी है, जो ख़तरों को भाँपती है। कभी धोखेबाज़ों की आँखों से, तो कभी अपनी छठी इंद्री से। असल ज्वेलरी पर निगाहें रखती लूट की आँखें कितने गहरे षड्यंत्रों का प्लॉट रचती हैं, मगर अनुभवों की चौकस समझदारी से पिट जाती हैं। अलबत्ता इन्हीं के बीच मौली इस ज्वेलरी की सार्थकता प्रतिभाशाली ग़रीब बच्चों की शिक्षा में तलाशती है। इसी में निर्भयता भी और सुकून भी।

सुधा ओम की कहानियों का धरातलीय क्षेत्रफल जितना बड़ा है, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक संरचनाओं का यथार्थ उतना ही गहरा। ये कहानियाँ जितनी अंतर्वर्ती संकीर्णताओं से टकराती हैं, उतनी ही उदात्त स्वीकृतियों से समतल को सहेजती हैं। लेखिका इन समाज-मनोभूमियों के कथा विन्यास में जितनी उलझी हैं, उतनी ही उनसे बाहर निकलने वाली मनोभूमियों को रचती हैं। पर न तो लाउड होकर, न उनके पात्रों में अपनी सोच को जतला कर। इन कहानियों के पात्र न किसी पक्षधरता के पैरोकार हैं, न वैसी प्रतिबद्धताओं के। दो देशों के जीवन को आमने-सामने बुनने और फ्लैशबैक शिल्प से वर्तमान में अतीत को उगा देने वाला शिल्प विशिष्ट है। अलबत्ता एक स्त्री-मन इन कहानियों में इस तरह उभर कर आया है; जो संवेदनशील है, मगर भावुकता के शोषण से सतर्क। जो संकीर्णताओं से टकराता है, मगर सौहार्द को रचता है। 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' संग्रह की ये कहानियाँ इस मायने में स्त्री विमर्श को व्यवहारिक सोच भी प्रदान करती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

सूखे पत्तों पर चलते हुए

समीक्षक : अरुण सातले

लेखक : शैलेन्द्र शरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

अरुण सातले
खंडवा, मप्र
संपर्क- 9425495481

आज के इस अतिवाचाल समय में, अंत:सत्य के प्रति आग्रही, वैचारिक बेचैनियों के साथ अंतरसंवाद करती शैलेंद्र शरण की कविताएँ उनके आत्म संवेदन की कविताएँ हैं। शरण अपने समय से संवाद करते नज़र आते हैं, तो कभी सामयिक धरातल पर व्याप्त वैचारिक बेचैनियों से प्रतिप्रश्न करते हैं, और समय के सच को शब्द के माध्यम से प्रकट करते हैं। उनकी कविताएँ सघन अनुभूतियों की शब्द गूँज हैं जो अनायास उनकी स्मृतियों को दस्तक देती हैं और पाठक को भी आत्म संवेदित होने का न्योता देती हैं।

कवि सामाजिक वर्जनाओं, वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य, सामाजिक समरसता, व्यक्तित्व, अपनी विरासत को, लोक संस्कार को उसकी बेलौस कहन और शिल्पगत सौंदर्य के साथ कविताओं में सहज ही कह देते हैं। इस तरह देखा जाए तो शरण का कविता संसार वैविध्यपूर्ण है। अपनी कविताओं में वे विरासत को आज के ज़मीनी यथार्थ के बीच तलाशते हैं, उनकी कविता सघन अनुभूतियों में जज़्ब आवाज़, शब्द गूँज बनकर, स्व के रूप में अपने होने का साक्ष्य देती हुई प्रतीत होती है और एक पुकार शब्दों को उच्चारती हुई, विलुप्त हो जाती है। यह अमूर्त भाव-बोध है, जो हमें झंकृत कर जाता है। उनकी 'क्षोभवश" कविताओं में से एक छोटी कविता देखें- प्रतिकूल ज़िंदगी का / एक-एक अंगारा / अपनी अपनी हथेली पर लेते ही / तुम चीखे और झटक दिया / मैं चुप रहा / हाथ सहित हथेली तान दी / मजाक था ज़िंदगी का एक वाकया / जिसे लेकर तुम हँसे / और मैं स्तब्ध / अब मेरी हथेली पर एक फफोला है / तुम्हारी दो उँगलियों में / ज़ंग लगी पिन देकर कह रहा हूँ / लो इसे फोड दो।

अपनी भाषिक संरचना में सूक्तियों की तरह संग्रह की कई कविताएँ, बोलती हैं, आपसे कुछ कहती हैं। हम अपने समय को आत्मसात् कर जीते हुए भी एक प्रकार से भय महसूस करते हुए क्यों जीते हैं ? विचारपरक, सूक्ति की तरह लिखी गईं कविताएँ, आज के इस दौर में आदमी के ज़ेहन में चस्पा हो जाती हैं। जैसे : दावानल कविता की आरंभिक पंक्तियाँ- जहाँ से शुरू होती है / वहाँ नहीं लौटती / अस्तित्व को राख करती / ऐसे ही फैलती है आग

उनकी लगभग सभी कविताओं में कवि वैषम्य मन:स्थितियों, वर्जनाओं में जीते हुये मनुष्य के भीतर मानुषभाव के बीजारोपन का भाव निर्मित करते हुए उसे मनुष्य होने का एहसास कराता है। अकेलेपन की त्रासदी कविता की पंक्तियाँ हैं- रात दो बजे दाँतों में ब्रश करते हुए / वह छत से झाँककर देखता है / गली के कुत्ते आख़िर भोंक क्यों रहे हैं / कंधे फैलाते हुए लौटता है कमरे में

शैलेन्द्र अंतर्संबंधों में पारदर्शिता के आग्रही एवं सहृदयी कवि हैं। उनका भाव-बोध पाठक के मन को छू जाता है, इसलिए उनकी कविताओं में घर मात्र चारदीवारी और छत भर न होकर रिश्तों, दोस्तों, परिजनों की ऊष्मा और उनकी उपस्थिती की उजास से भरा, पूरा संसार है। "निशानदेही" उनकी श्रेष्ठ कविताओं में शामिल हैं इसमें बचपन में लगी चोट के निशान का ज़िक्र है वे लिखते हैं- मेरे माथे पर चोट का गहरा निशान है / बहन की गोद से छिटककर गिर

गया / उसके बाद उसने मुझे कई दिनों तक गोद में नहीं लिया / उदास रही महीनों तक / ससुराल से आती है तो छू कर देख लेती है

इसी कविता की अंतिम पंक्तियाँ शिनाख़्त को लेकर अत्यंत गंभीर पंक्ति है – अब मैंने शहर में / अपनी पहचान कायम कर ली है / किन्तु क्या करूँ इस पहचान का / जब शिनाख़्त के बिना मेरी देह सही जगह नहीं पहुँच सकती हो।

जहाँ दोस्ती को लेकर संग्रह में "स्कूल के दिन" शीर्षक से कुछ कविताओं की शृंखला है तो माँ और पिता को लेकर भावभीना लेखन भी उनकी कविताओं में सघनता से अभिव्यक्त होता है-"खपरैल की छत" कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं- बाबूजी खपरैल की सेंध से अआती / धूप की लकीर से जान जाते थे / गर्मी की दोपहर के चार बज गए / और झट चाय का तगादा कर बैठते।

अपने पिता के सपने में आने और पिता की जीवन भर की चिंताओं को बिल्कुल नई दृष्टि से शैलेन्द्र अभिव्यक्त करते हैं- जब भाई बाबूजी सपने में आते हैं .... माँ / तो तुम्हारे बिना नहीं आते / और हर बार / घर की टूटी खपरैल सुधारते हैं।

संवेदनशील मन का यह नास्टेल्जिया बिल्कुल भी बनावटी नहीं लगता बल्कि पाठक को अपना सा लगता है . ऐसे सहृदय मन को टूटते रिश्तों की गठानें, उसे आहात कर जाती हैं जब उसके सारे अच्छे विचार भी ख़िलाफ़ मान लिए जाते हैं। संग्रह की कुछ कविताओं में पार्श्व में निहित कारणों की पड़ताल भी की गई है जो सुखद है। "खोने पर" शीर्षक शृंखला की एक छोटी सी कविता है- उस दिन असहज स्थिति में / तुम मुझे छोड़ गए / मैंने ट्रेन देखना बंद कर दिया / ठीक हुआ / नदी किनारे, चाँदनी रात में / तुम मेरा हाथ छुड़ाकर नहीं गए / अन्यथा मैं / नदी से बैर ले लेता / और अमावस को भी / आसमान की ओर नहीं देखता।

नि:सन्देह शरण प्रेम केंदित कविताओं के अप्रतिम रचनाकार हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी कविताओं, अपने भीतर की आवाज़ को, सच को सँभाले रखा है और यही एक संवेदनशील मनुष्य की मनुष्यता है। उनकी कविताओं में उदात्त स्वरूप हमें दिखाई देता है। किसी में मन के सम्पूर्णता से अटके रहने का इससे बेहतर कोई और बिम्ब नहीं हो सकता- एक कुँआ है जिसमें पानी है / डुबाने में सक्षम / एक मियाल है सौ बरस पुरानी / पर्याप्त वज़न सह सकती है / एक रस्सी है / गले का नाप पता है जिसे / और छोटी सी जान / जो किसी में अटकी पड़ी है।

उन्होंने प्रेम-केन्द्रित कविताओं के अनूठे बिम्ब रचे हैं, जो अपनी भाषिक-संरचना और शिल्पगत विशेषताओं से अद्‌भुद सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। वे जीवनगत सौन्दर्य की छवियाँ रचकर, उन्हें घर अर्थात अपने मन को स्थायी भाव देते हैं। इनके कविमन स्त्री-पुरुष के परस्पर देह-बोध की चित्ताकर्षक लुभावनी छवियाँ निर्मित नहीं करते बल्कि वे प्रेम के उदात्त स्वरूप को देखते हैं। उनके लिए प्रेम स्त्री-पुरुष और अपनों के बीच संबंधों की उजास है। प्रेम का यह प्रदीप्त भाव उनका स्थायी मिज़ाज़ है, इसलिए संग्रह की प्रेम केन्द्रित कविताओं के मनोहारी बिम्ब मोहते हैं और हमें प्रभावित करते हैं। उनकी प्रेम कविता का एक और स्तब्ध कर देने वाली अभिव्यक्ति देखें- जब मैं खुरच रहा था / चमड़ी से तुम्हारा रंग / कहाँ थे तुम / जब मैं होठों से छुड़ा रहा था / अंतर की ख़ुशबू / कहाँ थे तुम / जब मैं उलीच रहा था / हृदय का रक्त / कहाँ थे तुम / अब इस देह में / तुम्हारे नाम का कुछ भी शेष नहीं / सोचता हूँ / वीराने में पटक दूँ / गिद्धों को आमंत्रिक करूँ / क्या फर्क पड़ेगा मुझे / और तुम्हें ?

शरण की कविताओं के विविध वर्ण हैं, जो शब्दों के सघन-शिल्प में अभिव्यक्त होता है। उनकी हर कविता प्रेम का उत्स, अन्त:सच को उजागर करती है, जो मनुष्य होने की पहचान है। प्राय: हर रचनाकार के केंद्र में मनुष्य होता है, किन्तु शैलेन्द्र इस माने में अपनी पृथक पहचान स्थापित करते हैं, कि वे हर आदमी को, मनुष्य को अंतस के सच पर चलने को प्रेतित करते हैं, जो उनकी हर कविता का मूल स्वर है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(दोहा संग्रह)

पूछ रहा है यक्ष

समीक्षक : गोविंद सेन

लेखक : हरेराम समीप

प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

गोविंद सेन
193 राधारमण कालोनी, मनावर, जिला-धार, पिन-454446, मप्र
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

दोहा काव्य का एक जनप्रिय छंद है। 'पूछ रहा है यक्ष' हरेराम समीप का सातवाँ दोहा संग्रह है। समीप एक समर्थ दोहाकार हैं। युगीन सच्चाई को बेबाकी से अपने दोहे में अभिव्यक्त करते हैं। इन दोहों में समीप यह बता रहे हैं कि वे सामान्य जन के पक्ष में खड़े हैं। ये दोहे जन सरोकारों से जुड़े हैं। इन दोहों में कथ्य मुख्य है शिल्प नहीं। सामाजिक और राजनैतिक जीवन में व्याप्त तमाम विसंगतियों, वैज्ञानिक सोच का अभाव, मज़हबी नफ़रत, विडम्बनाओं, दोगलापन और धार्मिक पाखंडों को समीप ने प्रभावी रूप से अभिव्यक्त किया है। ये दोहे सीधे कबीर की परम्परा से जुड़ते हैं। इस बात की तस्दीक संग्रह के दोहे करते हैं। इन दोहों में समय के यक्ष प्रश्नों के जवाब मिलते हैं।

समीप उसी संसार को देखते हैं जो उनके सामने है। उसी को सच्चा मानते हैं जो वाकई दिखाई दे रहा है। इस तरह वे स्पष्ट कर देते हैं कि आँखें इसी वास्तविक संसार की तकलीफों पर टिकी हैं। उनका सरोकार इसी जीवन से है। उस पार के जीवन पर उनका यकीन नहीं। उस पार के जीवन की ओर देखने का मतलब वर्तमान जीवन से मुख मोड़ना है। दोहा देखें-

जो है मेरे सामने, यह सच्चा संसार /मैं क्यों देखूँ बेवजह, जीवन के उस पार

तमाम विकास के दावों के बावजूद आज भी आम आदमी टूटे कप में चाय पीने पर मजबूर है। विकास धरातल पर नहीं उतरा। जनता हुक्मरानों से केवल आश्वासन पाती रही। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हुई। आम आदमी के लिए वक्त नहीं बदला है-

बदल न पाया वक्त मैं, सदा रहा निरूपाय/ जीवन भर पीता रहा, टूटे कप में चाय

लाल क़िला देता रहा, आश्वासन हर साल/ जैसे के तैसे रहे, मगर हमारे हाल

अमीर ग़रीब की खाई निरंतर बढ़ती जा रही है। कुछ लोगों के पास अथाह दौलत है जबकि मज़दूरों के लिए दो जून की रोटी जुटाना भी कठिन है। मज़दूरों का संघर्ष अंतहीन है।

जन्म दिवस पर आपने, खर्च किए जो दाम/ चलता इक मज़दूर का, महीने भर का काम

हुक्मरान करते रहे, उसके साथ फरेब/ खाली की खाली रही, इक मजूर की जेब

समीप के कुछ दोहे ऐसे दृश्य निर्मित कर देते हैं जिसमें ग़रीबी और अभावों की एक पूरी कहानी छिपी होती है। जैसे- घर में धेला तक नहीं, बैठे सभी निराश/ संस्कार कैसे करें, माँ की रक्खी लाश

आम आदमी की पीड़ा को लेकर समीप हुक्मरानों को ही नहीं, भगवान् को भी कटघरे में खड़ा कर देते हैं। वे लोगों के अज्ञान पर तंज करते हैं। लिखते हैं- धरती पर हम सह रहे, दुख, पीड़ा, अपमान / और वहाँ तुम स्वर्ग में, बैठे हो भगवान्

जहाँ पालथी मारकर, बैठा हो अज्ञान /वहाँ प्रगति के मायने, जाने बस भगवान्

सचमुच मेरा देश है, चमत्कार की खान /पोंगापंथी से करें, लोग देश निर्माण

राजनीति में व्याप्त मूल्यहीनता पर समीप बार-बार चिंता प्रकट करते हैं। समीप हुकूमत के हर उस काम की मुखालिफ़त करते हैं जिसे वे देश के लिए हितकारी नहीं है। पर्यावरण भी उनकी चिंता का विषय है। हुकूमत आज सबको बेचने पर आमादा है। वे कहते हैं-

बातों और काम में, नहीं दिखे कुछ मेल/
राजनीति नेपथ्य में, करे खून का खेल

आज हुकूमत कर रही, धरती का व्यापार/
पानी, हवा, प्रकाश सब, बिकने को तैयार

कोरोना काल के दुखद दौर ग़रीब जनता ने ख़ूब झेला है। रोज़ कमाने और खाने वालों पर तो जैसे पहाड़ टूट गया। इस दौर को समीप ने दोहों में बख़ूबी समेटा है। इस काल के कई दृश्य दोहों में नज़र आते हैं –

कहीं आक्सीजन नहीं, कहीं दवा से तंग/
सुना रहे हैं मसखरे, फिर भी हास्य प्रसंग

कोरोना ने कर दिया, हमको यूँ मजबूर /
सड़कों पर बेबस चले, मेहनतकश मज़दूर

खेलकूद अब बंद हैं, घर भी लगे अजीब/
इन बच्चों को आजकल, बचपन नहीं नसीब

रिश्ते धन आधारित हो गए है। हमसफ़र विश्वासघात कर रहा है। बुढ़ापा उदास है। आपसी संबंधों की टूटन को भी समीप रेखांकित करते हैं।

धन आधारित हो जहाँ, आपस के संबंध /
निश्चित ही विश्वास के, वहाँ टूटते बंध

जिसको माना हमसफ़र, मन का हिस्सेदार/ रस्ते में वह चल दिया, मेरा पाकिट मार

गए बुढ़ापे में सभी, कोई रहा न पास /
जीवन की इस शाम के, साए बहुत उदास

समीप कई दोहों में नवीन बिम्बों, प्रतीकों और दृश्यों का सृजन करते हैं। दोहों की भाषा सहज सरल और तल्ख़ है। समीप जी ने किसी भी शब्द से परहेज नहीं किया है। भले ही वह शब्द अंग्रेज़ी, उर्दू या अन्य भाषा का हो। दोहे की माँग के अनुसार प्रचलित शब्द को ले लिया है। दोहों में ऐसे कई शब्द आए हैं। जैसे इंस्टेंट, जेहनों, अमास, बेसमेंट, शरर अल्फाज, कंक्रीट, ज़हरफरोश आदि।

दोहों में अक्सर तुकांतों के दोहराव की समस्या दिखाई देती है। किन्तु समीप के इन दोहों में कुछ नए तुकांत भी देखने को मिलते हैं। मसलन-संवेदनहीन-नाइनटीन, गैल-मैल, यकीन-मकीन, जब्र-सब्र, कुदृष्टि-ओलावृष्टि, विकास-अमास, आज-मिज़ाज, रखैल-दगैल, संक्षिप्त-निर्लिप्त, हाल-वाटरफाल, विद्रोह-व्यामोह, दूकान-प्रतिमान, आदि। कुछ ऐसे तुकांत भी हैं जिन्हें शुद्धतावादी दोहाशास्त्री शायद न मानें। ऐसे ही कुछ तुकांत देखिए- अटैक-मिस्टेक, बाढ़-झाड़, साथ-भात, झूठ-घूँट, मूक-फूँक, उम्मीद-नींद, राज-नाराज, सहभोज-मौज, खान-निर्माण, द्वेष-देश, आग-आग, सन्देश-भेष, बर्बाद-बाद, भयग्रस्त-गश्त, बाढ़-उजाड़, दोष-अफ़सोस, आकाश-अहसास, रोज़-बोझ, चपेट-पेट, नेक-अनेक, घुड़दौड़-हँसोड़, इस्कूल-फूल, चाह-तनख्वाह, अजाब-तालाब, तोड़-दौड़, चपेट-पेट, बेजोड़-दौड़, संबंध-बंध, मज़दूर-दूर आदि।

समीप एक सच्चे अदीब को बाग़ी मानते हैं। दुख, शोषण और अवरोध उसके करीब ही रहते हैं। ये ही उसे रचने के लिए प्रेरित करते हैं।

बाग़ी ही होता सदा, सच्चा एक अदीब /
दुख, शोषण, अवरोध सब, उसके रहे करीब

तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद समीप आस नहीं छोड़ते-

करे धूप से सामना, आँधी से मुठभेड़ /
बेलिबास होता नहीं, कभी आस का पेड़

समय के अंधे भक्तों को दोहाकार समय को बदलने के लिए प्रेरित करते हैं। हमारे चलने से ही वक्त चलता है-

इस समय के आप क्यों, बिलकुल अंधे भक्त/ हम चलते हैं तब कभी, चलता है यह वक्त

कुल मिलकर यह संग्रह अपने समय की पड़ताल करता है। हुकूमत के सामने सवाल उठाता है। दबे-कुचले, वंचितों के पक्ष में खड़ा होकर अपना प्रतिरोध दर्ज कराता है। समीप हाकीम, हुक्काम, सरमायेदार, मुंसिफ आदि शोषक वर्ग को कटघरे में खड़ा करते हैं। ये दोहे वंचितों की वाणी हैं। इन दोहों में आँखन-देखी है। आवरण आकर्षक है।

000

नई पुस्तक

(आलोचना)

क़लम कैमरे की आँख की तरह

लेखक : प्रतावराव कदम

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अदृश्य त्रासदी का कहर और दृश्यमान दुष्टता का बखान, तारीख़ बदलती है दशा दिशा नहीं बदलती,विकास ने नहीं बक्शा किसी गांव को , कलम, कैमरे की आँख की तरह, तीसरे अंपायर के अनुसार 'घर के भी और घाट के भी', वे न भेड़िये समझ में आते है न गिद्ध, एक दूसरे से रीझते खीझते हुए, अतीत से वर्तमान तक चहल कदमी करती कहानियाँ, जीवन की बारह-खड़ी, संसद मार्ग या दलाल स्ट्रीट, साहित्य के कई कोण, जीवन की पहेली के समाधान की तलाश, अफगानिस्तान बदलते चेहरे, शिक्षा, व्यवस्था और समाज का आईना, जीवन प्रवाह में बहते बहुत कुछ हासिल होता है, मेरा जीवन, मेरा संघर्ष, अब्दुल गफ्फार खान, उपन्यास के मार्फत संगीत यात्रा, जैसे शीर्षकों से लिखे गए वरिष्ठ आलोचक प्रतापराव कदम के सोलह आलोचनात्मक लेखों को इस किताब-क़लम कैमरे की आँख की तरह, में संकलित किया गया है।

000

पुस्तक समीक्षा

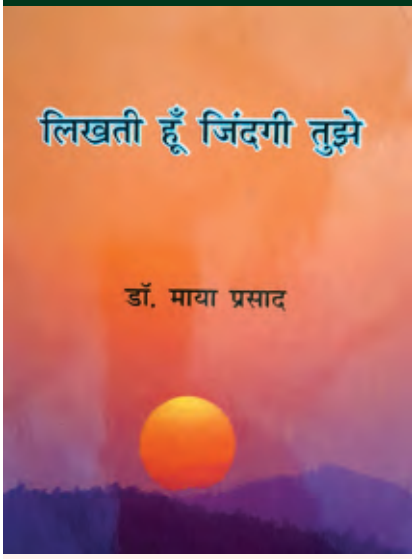

(कविता संग्रह)

लिखती हूँ ज़िंदगी तुझे

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : डॉ. माया प्रसाद

प्रकाशक : दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार
पो - अशोक नगर, राँची
झारखण्ड - 834 002
मोबाइल- 8789263238

बर्फ संवेदनाओं के वक्ष पर आग के अक्षर / बर्फ से लिपटे हुए हैं, नगर, बस्ती, घर, / लिखूँगी आग के अक्षर... / है मलिन अभिव्यक्ति के आकाश का चेहरा / हर तरफ ज़िंदा कलम पर लग रहा पहरा / नयन में दुबके हुए, सपने सजग हो लें / आँसू पलकों से ढुलककर, भीती भय धो लें / सृजन की उर्वर धरा यह हो नहीं ऊसर / लिखूँगी आग के अक्षर....

उपरोक्त गीतांश है डॉ. माया प्रसाद के सद्य प्रकाशित काव्यसंग्रह "लिखती हूँ ज़िंदगी तुझे" में संकलित एक गीत "आग के अक्षर" से। इसे पढ़ते हुए सहज ही कवि की संवेदना की सघनता, भाषिक उजास, सम्प्रेषण कौशल एवं दृश्यातमक शक्ति का अंदाज़ा हो जाता है।

कविता का काम मनुष्यता की रोशनी और उसके ताप को ठंडे अँधियारे समय में बचाकर रखना है और बिना आग के अक्षर लिखे ऐसा करना भला संभव कहाँ है? आज एक कवि के लिए यह ज़रूरी ही है कि आग के अक्षरों से बर्फ संवेदनाओं के वक्ष पर अपनी बात लिखे ताकि कठोर ठंडी संवेदनाओं की बहुस्तरीय परतों को पिघला कर पुन: पानी किया जा सके, और हम देखते हैं कि माया जी अपनी कविताओं में यही काम कर रही हैं। डॉ. माया प्रासाद एक बहुत ही वरिष्ठ रचनाकार हैं, जिनके दो काव्य संग्रह इस संग्रह के पूर्व "सुनो युधिष्ठिर" एवं "बाकी है प्रार्थनाएँ" के नाम से आ चुकी हैं। इसके अतिरिक्त उनके कहानी संग्रह एवं आलोचना की भी किताबें आ चुकी है। कई पत्रिकाओं के सम्पादन विभाग से भी सम्बद्ध रही हैं। वे नारी अस्मिता एवं सशक्तिकरण के लिए संघर्षरत एक ऐक्टिविस्ट भी रही हैं, इसलिए उनकी कविताओं में दर्ज मनुष्यता की पीड़ा ख़ासकर स्त्रियों के दु:ख दर्द आँखन देखी है।

माया जी के इस संकलन में गीत, ग़ज़ल और कुछ मुक्त छंद की कविताएँ संकलित हैं। उनकी कविताओं में अंतर्निष्ठ माधुर्य, लय, गति एवं शब्द-सौष्ठव अत्यंत सरस एवं मनोहारी ढंग से अभिव्यंजित हुए हैं। उनकी कविताओं से गुज़रते हुए हम पाते हैं कि मन की पीड़ा, क्षोभ, गुस्सा, उनकी कविताओं में बहुत उद्वेग के साथ बाहर आते हैं, लेकिन उसके बाद भी कविताओं में शब्द अपने अनुशासन की मर्यादा का कभी अतिक्रमण नहीं करते हैं। माया जी की कविताओं के गुज़रना अपने आपको को वैचारिक रूप से समृद्ध एवं आत्मिक रूप से संतुष्ट करना है। माया जी के गीत, उनकी गज़लें कोरे प्रेम की निजी पुकार भर नहीं है बल्कि एक तरफ इसमें जन साधारण की ज़िंदगी की लाचारगी, बेचारगी, अश्रु और उनके संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति है तो दूसरी तरफ प्रेम आत्मा की अतल गहराइयों का संस्पर्श कर आती हुई प्रतीत होती है।

कविता की किताब के साथ ऐसा बहुत कम ही होता है कि उसे कोई आद्यांत बिना ऊबे पढ़ जाए, लेकिन इस किताब के साथ ऐसा ही हुआ। संग्रह की सभी कविताएँ एक बार नहीं, कई-कई बार पढ़ने के लिए बाध्य कर देती हैं। हर एक कविता की अभिव्यंजना उतनी ही आकर्षक, उतनी ही मर्मस्पर्शी और उतनी ही सरस भी है।

इस संग्रह में विभिन्न आस्वाद की कविताएँ मिलती है। लेकिन हर रूप में ये कविताएँ अनूठी, पठनीय एवं स्मरणीय हैं। एक तरफ जनपक्षधरता की कविताओं में कहन का नया ढंग देखने को मिलता है, वहीं प्रेम कविताओं में ग़ज़ब की कल्पनशीलता है जो सहज ही अपने आकर्षण में न केवल बाँध लेती हैं बल्कि बींध भी देती है। सामयिक घटनाक्रम, राजनीतिक परिस्थितियाँ और उससे उपजे परिवेश पर भी माया जी की कलम उतनी ही ख़ूबसूरती एवं सशक्त तरीके से से चली है। इसलिए शायद वे कह पाती हैं- रक्त से चुपड़ी सड़क है और सन्नाटे, / सभ्यता के गाल पर मज़हबी छाँटे / कौन मिलकर दर्द बाँटे, कौन दे मरहम, / हर तरफ हैवानियत फहरा रही परचम

आज़ादी के 75 वर्षों के बाद भी जब देश आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा है, यह कैसी विडम्बना है कि चुनाव आज भी पैसे, शराब, झूठे वादे और जाति-धर्म का खेल बना हुआ? सरकारें लाख विकास की बात कर ले लेकिन चुनाव आते ही विकास के सारे क़िले हवाई हो जाते हैं एवं धरातल पर उम्मीदवार की चुनाव जीतने की हैसियत देखी जाती है और इसके लिए और चुनाव जीतने की योग्यता तय होती है नोटों की गड्डियों से, उम्मीदवार की जाति से, धर्म से। वर्तमान समय की राजनीतिक परिस्थितियों एवं लोकतंत्र के विद्रुपीकरण चुनावी माहौल एवं लोकतंत्र के माखौल पर निम्नांकित पंक्तियाँ कितना करारा व्यंग्य करती हैं- पस्त परिंदों के आगे मुट्ठी भर दाने डाल गए / बस्ती के हर आँगन में वे सिक्के चंद उछाल गए।/ जनहित के सौ-सौ नुस्खे पॉकेट में रखकर चलते थे / जीत गए तो नेता जी वे सारे वादे टाल गए।/ इस नुक्कड़ पे हँसी परोसी उसे चौराहे ग़म बाँटे / बस्ती के दौरे पर आए, करके कई कमाल गए। इसी तरह इन पंक्तियों को देखें- प्रस्तावों की हाँडी में जो दही जमाया धोखा है, / सच्चा है कुर्सी का कद, बाकी नज़रों का धोखा है। पारिवारिक रिश्तों की भंजित होती मर्यादा हो या सामाज में बढ़ता अविश्वास व इंसानियत से उठता भरोसा, माया जी की कविताएँ बहुत ही निर्द्वंद्व रूप से इन सब चीज़ों की ओर इशारा करती है एवं समाज को दर्पण दिखलाती हैं। बन रहे बेटे सुबह से शाम तक छल चंद, / और माँ की देह पर हैं सैकड़ों पैबंद /

या फिर जब वे कहती हैं- सब्जे थे कभी आज वे वीरान हो गए, / हम अपने घर के आख़िरी मेहमान हो गए। / धागे की नाज़ुकी का नहीं था उन्हें गुमान, / मनकों के बिखरने पर वे हैरान हो गए।

इस दुनिया में जब तक कविता बची रहेगी, स्वतंत्र कल्पनाशीलता भी बची रहेगी और जब तक कल्पनाशीलता बची रहेगी तब तक दुनिया जीने के लायक रहेगी, ख़ूबसूरत रहेगी। लगातार बदसूरत और संवेदनहीन होती जा रही दुनिया में कविता मनुष्यता के लिए बहुत बड़ा सहारा है। आज जब कविता राजनीतिक घृणा को प्रकट करने का टूल बन गया है एवं मनुष्यता साहित्य से ही छीज रही है ऐसे में एक सचेत व ज़िम्मेवार कवि का दायित्व बहुत ही ज़्यादा बढ़ जाता है और इस ज़िम्मेवारी का निर्वहन माया जी बहुत ही ऊर्जा से लबरेज हो कर करती हैं, जब वे कहती हैं- आहवाहन / झुकी हुई आँखें देखो इस दर्पण की सच्चाई में / थोड़ी आँच जला लो अपनी मुरझाई तरुणाई में / जली हुई खेती से जैसे फसलें रूठा करती है /वैसे ही हारे कदमों से मंजिल छूटा करती है / थोड़े काँटे चुभ जाने दो अपने कोमल तलवों में / फिर सपनीले फूल खिलेंगे पथराई अंगनाई में।

इसी तरह एक दूसरे गीत "सुख" में भी वे कभी हार नहीं मानने का आह्वान करती हुई कहती हैं- मुट्ठी बाँधो विश्वास रखो, / सब सुख है इसी हथेली में।/ खुशियों के फूल नहीं खिलते / सपनों की बंद हवेली में / बेमकसद साँसों की गठरी / ढोना भी कोई जीवन है, / कलपे जो बंद तिजोरी में / ऐसी पूँजी भी क्या धन है ?

परिस्थितियाँ चाहे जैसे भी हो, उम्र और शरीर चाहे धोखा देना चाहें लेकिन एक रचनाकार की जिजीविषा कभी हार नहीं मानती। जब तक रचनाकार ज़िंदा रहता है वह समाज को कुछ देने के अपने कर्त्तव्यबोध से बँधा रहता है और यही न हारने वाली रचनाधार्मिता के कारण 75 वर्ष की आयु में डॉ. माया प्रसाद का मन कह उठता है।

नाथ संशयों के फणीधर को / कठिन फैसले ख़ुद लेना है। / ज़िद है गिर-गिर कर उठने की, / तनिक नहीं शर्मिंदा हूँ।/ अरे अभी मैं ज़िंदा हूँ।/ (परिचय मेरा कविता से)

इसी तरह एक दूसरी कविता की ये पंक्तियाँ हैं- कोई तो सूरज के कानों में कह दे यह बात, / लंबी! अरे बहुत लंबी हो गई अंधेरी रात। नब्बे पृष्ठों की यह पुस्तक हर कविता प्रेमी को अवश्य भाएगी ऐसा मेरा विश्वास है। अगर मुद्रण एवं पेज सेटिंग संबंधी कुछ ग़लतियाँ इसमें नहीं होती तो यह संग्रह और भी अधिक आकर्षक बन सकता था।

000

नई पुस्तक

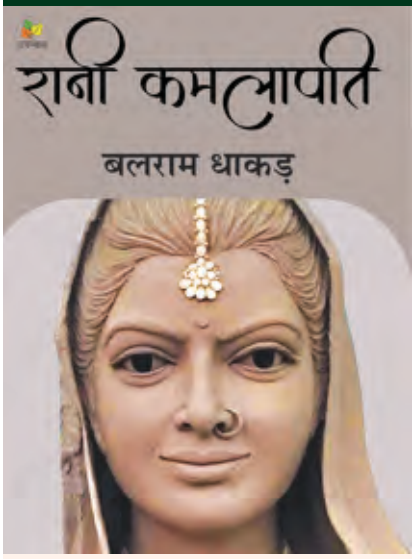

(उपन्यास)

रानी कमलापति

लेखक : बलराम धाकड़

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

भोपाल की रानी कमलापति पर लिखा गया उपन्यास रानी कमलापति शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है, उपन्यास के लेखक बलराम धाकड़ हैं। बलराम धाकड़ पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- ऐतिहासिक उपन्यास लिखने से पूर्व उसमें वर्णित ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण आवश्यक होता है। रानी कमलापति से संबन्धित ऐतिहासिक स्थलों में गिन्नौरगढ़ का किला और भोपाल स्थित कमलापति महल ही ज्ञात हैं। गिन्नौरगढ़ का किला रखरखाव के अभाव में वर्तमान में खण्डहरनुमा हो चुका है। महान गोंडवाना के वैभव के साक्ष्य यहाँ बिखरे पड़े हैं। कमलापति महल, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा संरक्षित होने से अच्छी स्थिति में है। इसकी कला और स्थापत्य आज भी रानी कमलापति-कालीन गौरव के साक्षी हैं। भोजेश्वर शिवालय, वर्तमान रायसेन जिले के भोजपुर का प्राचीन शिव मंदिर है जो महान प्रतापी राजा भोज और परमारकालीन वैभवमयी स्थापत्य- शैली का अप्रतिम उदाहरण है।

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

समीक्षक : रेखा भाटिया, अशोक प्रियदर्शी, प्रमोद त्रिवेदी

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शारलेट
नॉर्थ कैरोलाइना 28277
मोबाइल- 704-975-4898
ईमेल - rekhabhatia@hotmail.com

अशोक प्रियदर्शी
एम. आई. जी. 82, सहजानंद चौक
हरमू हाउसिंग कॉलोनी
राँची, झारखण्ड 834002
मोबाइल- 9430145930

प्रमोद त्रिवेदी
"मन्वन्तर", 205, सेठीनगर
उज्जैन, मप्र, 456010
मोबाइल- 9755160197

रेखा भाटिया

अशोक प्रियदर्शी

प्रमोद त्रिवेदी

इस उपन्यास का प्रभाव भीतर तक झंझोड़ता है

रेखा भाटिया

कोरोना महामारी ने भारत के साथ दुनिया में उग्र रूप लेकर तबाही मचाई है। दुनिया के सबसे विकसित देश अमेरिका में जहाँ हर छोटी-मोटी बीमारी पर शोध होता है और संभवत: दुनिया में बीमारियों के इलाज में अग्रणी है। कोरोना महामारी ने बहुत जटिल हालात पैदा कर एक भयंकर रूप ले लिया है, लोगों के जीवन को बुरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया है। लाखों लोग कोरोना महामारी की बलि चढ़ चुके हैं। करोड़ों ने अपनों को खोया है। मौत के इस तांडव में लोग हताश हो चुके हैं। पहली लहर में मास्क कहीं नहीं मिल रहे थे। घरों में मास्क सिलकर हॉस्पिटल्स, नर्सिंग होम्स और क्लिनिक्स में पहुँचाए जा रहे थे। मास्क बनाने के काम आने वाला सामान और अन्य रोज़मर्रा का सामान लेने के लिए घंटों स्टोर्ज़ के बाहर लाइन में खड़ा होना पड़ता था। हालत बेकाबू हो चुके थे।

स्कूल, कॉलेजों में शिक्षा प्रभावित हो गई है। सभी क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित हैं। सारा ढाँचा चरमरा रहा है। आम लोगों का सिस्टम से, सरकार से, विश्वास उठ रहा है। लोगों में नम्रता जो कि यहाँ के स्थानीय लोगों की ख़ास पहचान थी, वह खो-सी गई है। लोगों में आक्रोश है। नस्लवाद ने दशकों बाद घिनौना रूप धारण किया है, लोगों का एक दूसरे पर विश्वास उठ गया है। कोरोना की पहली लहर ने प्रजातंत्र की कई परतों को उधेड़ कर रख दिया। चुनावी माया और ताकतों की होड़ के खेल ने लोकतंत्र को ऐसा धर दबोचा कि कानून व्यवस्था और इंसानी जान की कीमत कौड़ियों की रह गई है। आर्थिक स्थिति बद से बदतर हो खस्ता हाल हो चुकी है। करोड़ों लोग अपनी नौकरियाँ गँवा चुके हैं। लॉक डाउन में स्कूलों के बंद हो जाने से लाखों बच्चों को सँभालने के लिए कई पालकों को नौकरी छोड़नी पड़ी। आर्थिक मंदी, बीमारी, अकेलापन,

प्रशासन का जनता के, देश के हित से अधिक अपने चुनावी हित को महत्त्व देना, चीन और अमेरिकी सरकार की झड़प, भविष्य को लेकर संशय, स्वास्थ विभागों पर बढ़ता भार, कारोबारों को होता नुक्सान, लोगों का घरों से काम करना, रोज़मर्रा की वस्तुओं की पूर्ति में अवरोध, आमदनी में कमी, सायबर अटैक से ईंधन की आपूर्ति में रुकावट कई-कई समस्याओं ने एक साथ मिलकर विकराल रूप धर लिया है। इन समस्याओं ने सामान्य जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया है और मानसिक तनाव में वृद्धि कर दी है, जिसका सीधा असर हर आयु वर्ग के मानसिक स्वास्थ पर पड़ा है। हर आयु वर्ग के लोग अवसाद में जा रहे है। घरेलू हिंसा के साथ, गन वायलेंस भी बढ़ गया है। वैक्सीन आ चुकी है, नई सरकार चुन ली गई है। कोरोना पर कुछ नियंत्रण के बाद दूसरी लहर ने रफ़्तार पकड़ ली है। नई सरकार जी तोड़ कोशिश कर रही है, कई प्रलोभन दे रही है, लोग वैक्सीन ले लें। लेकिन कुछ राजनैतिक दलों ने राजनीति का एक बुरा खेल खेलकर एक ख़ास विचारधारा को मानने वाले लोगों की मानसिक सोच को बदला है, वह लोग वैक्सीन को नहीं ले रहे, टस से मस नहीं हो रहे हैं। इस प्रकार के लोगों की संख्या अमेरिका की आबादी का एक बड़ा हिस्सा है, जो अपनी जान के साथ दूसरों की जान को भी लगातार खतरे में डाल रहे हैं। एक नकारात्मकता ऊर्जा देश के वातावरण में घुल गई है। सैनिक युद्ध में देश की भौगोलिक सीमाओं की रक्षा करते हैं। डॉक्टर वह योद्धा हैं जो देश की जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। वायरस एक अदृश्य शक्ति, जिसने देश में लोगों की मानसिकता के भूगोल को सदा के लिए बदल कर रख दिया है, इसका असर आज भी दिख रहा है और आने वाले समय में दशकों तक दिखेगा। प्रवासी भारतीय हूँ, यहाँ की नागरिक हूँ। अपने जीवन काल में इतना डर, ख़ौफ़, मानसिक तनाव, पीड़ा, मृत्यु का तांडव 9/11 के समय भी नहीं देखा,भोगा था। 9/11 के वक्त देश के नागरिक एकजुट थे, आपसी सौहार्द और विश्वास था। राजनीतिक पार्टियाँ पहले से अधिक एकजुट होकर आतंकवाद का मुँह तोड़ जवाब देने को तत्पर थीं। तब राष्ट्रपति बुश ने कहा था, "आतंकवाद अदृश्य दुश्मन है, फेसलेस ऐनिमी और मिलकर लड़ना है।" दशकों तक आपसी सहमति से आतंवाद का मुकाबला करने के लिए एक दूसरे का साथ देते रहे। सैनिकों की, उनके परिवारों की, देश की फ़िक्र फ़क्र के साथ एक साथ की।

विश्व के सबसे पुराने प्रजातंत्र में कोरोना महा संकट से जूझते देश में कैपिटल बिल्डिंग पर अपने ही लोगों द्वारा हमला, घरेलू आतंकवाद यह कौन सा दृश्य उभर रहा है ? स्कूलों में विद्यार्थी कई तरह के सवाल पूछने लगे हैं। शिक्षक हैरान हैं क्या जवाब दें ? छोटी अवस्था में बच्चे मानसिक तनाव झेल रहे हैं, ऑफ़िसों में, मॉल्स में, अन्य स्थानों में इसका कुप्रभाव साफ़ छलकता है। कौन सी अदृश्य ताकतें स्वर्ग-से सुन्दर देश में नकारात्मकता फैला रही हैं ? ऐसी स्थिति में लोगों की बिगड़ती मानसिक स्थिति पर मनोविज्ञान क्या कहता है, कैसे मदद कर सकता है स्थिति और लोगों की मनोदशा को सुधारने में ? हौंसला बढ़ाने में, सकारात्मकता की स्थिति उत्पन्न करने में ?

वर्तमान समय और सामयिक काल में पूर्ण सत्य को उजागर करता, यथार्थ के हर पहलू को छूता अमेरिका की पृष्ठभूमि को लेकर रचा गया एक बहुचर्चित उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र", जिसकी लेखक हैं प्रतिष्ठित उपन्यासकार, संपादक, कवि, कहानीकार, कथाकार, टीवी -रेडियो -स्टेज की आर्टिस्ट सुधा ओम ढींगरा। जहाँ से इस उपन्यास की यात्रा शुरू होती है, वहाँ से पाठक की बाहर से भीतर की एक अनन्य यात्रा की शुरुआत हो जाती है। कई-कई परतों में चलचित्र की भाँति इस उपन्यास के सफ़र में अचंभित, विस्मित करती दु:ख और सुख के सागर में गोते लगाती, कभी यथार्थ के कड़वे घूँट पिलाती, कभी हिम्मत-हौसलों का सुखद रसपान करवातीं, कभी भावुकता के बहाव में बहाकर, कभी ज़मीर को ललकारती, कभी ज़मीर को धिक्कारती, कभी भारत के धरातल पर, कभी अमेरिका के धरातल पर, कभी समान्तर, कभी अकेली चलती कहानियों में बँधकर पाठक कई अद्भुत अनुभव करता है। यह कहानियाँ कभी दृष्यभास सी उभरती हैं, कभी अतीत में चली जाती हैं और इन कहानियों के तानेबाने में उलझ पाठक कई ऊर्जाओं को महसूस करता है, कभी प्रकृति की गोद में अठखेलियाँ करता है, कभी मनुष्य द्वारा पर्यावरण के किये गए बुरे हाल पर रोता है, कभी प्रकृति के अदृश्य विध्वंसक रूप से ठगा-सा रह जाता है। इन कहानियों का अनुभव पाठक उपन्यास की मुख्य नायिका डॉ. लता के आकाश की तरह विभिन्न रंग बदलते भाव,मन:स्थिति, सोच और नज़रिये के द्वारा लेता है। उपन्यास में दृश्य में कहानियाँ डॉ. लता आगे बढ़ाती हैं और अदृश्य में पाठक के ज़ेहन में हर पात्र जीवित होने लगता है और पाठक उन पात्रों की दुनिया में पहुँच कर इस अनूठे उपन्यास का सजीव पात्र बन जाता है। इस उपन्यास को रचने में लेखिका ने कमाल की शैली अपनाई है और कहीं से भी पूरे उपन्यास का लिंक उनकी कलम से छूटता नहीं है। पूरे उपन्यास को एक सूत्र में पिरोने में लेखिका सफल रही हैं।

सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" में डॉ. लता का परिवार कोरोना काल से जूझ रहे अमेरिका देश में बसा योद्धाओं का परिवार है, इस परिवार के सभी सदस्य डॉक्टर हैं और स्वयं डॉ. लता साइकॉलोजिस्ट हैं जो लोगों को मानसिक त्रासदी से उत्पन्न तनाव से मुक्त होने में मदद करती हैं। पिछले चालीस वर्षों से वह अपनी सेवाएँ देकर अपने मरीज़ों की हर संभव मदद कर रिटायर होती हैं। उन्हें प्रकृति से प्यार है, अपने घर के बगीचे में ही प्रकृति की गोद में आकाश के तले, पक्षियों और जानवरों के साथ उनकी अपनी एक अलग दुनिया रची बसी है। पेड़,पौधे,पंछी, जानवर, आकाश, धरती उन सभी से वह बातें करती हैं, गहरा जुड़ाव महसूस करती हैं, तनाव से मुक्त होने में प्रकृति की गोद में उन्हें राहत मिलती है। खुला आकाश उनके मन की तहों को खोल मन की स्थिति को अपने रंगों से दर्शाता है। वह चिंतन, मनन करती हैं। पर्यावरण की उन्हें चिंता है।

पंछियों, जानवरों, जीव-जंतुओं की भूख-प्यास और दु:ख -दर्द का उन्हें आभास है, वह बहुत संवेदनशील हैं तभी तो मानव मन की पीड़ा को बिना कहे ही थाह लेती हैं। उनके मरीज़ों की मनोवैज्ञानिक स्थिति को समझ वह उनके मन की यातना को दूर करने में, उनके जीवन की समस्याओं को सुलझाने में, उनमें फिर से नया आत्मविश्वास जगाने में और जीने की चाह पैदा करने का हर संभव प्रयास करती हैं और सफल भी होती हैं। उन्हें डायरी लिखने का शौक है और मरीज़ों के साथ हुए कुछ अनुभव, इनकी जीवन कहानियाँ अपनी डायरी के पन्नों पर लिख लेती हैं।

उनके पति डॉ. रवि इंफेक्शियस डिज़ीज़िस के स्पेशलिस्ट हैं, वह भी रिटारयरमेंट लेते हैं। दोनों के कुछ अधूरे सपने हैं और वह आगे की जीवन यात्रा उन सपनों को पूरा करने से शुरू करना चाहते हैं लेकिन कई बार इच्छाएँ और स्वयं के निर्णय काफी नहीं होते। डोर किसी और के हाथ में होती है। कोरोना महामारी के कारण यह दोनों योद्धा मानवता की सेवा की ख़ातिर वापस अपने काम पर जाने का निर्णय सहर्ष ले लेते हैं। कहानी के इस मोड़ पर डॉ. लता का पुत्र, पुत्री, पुत्रवधु जो सभी डॉक्टर हैं और कोरोना की लड़ाई में योगदान दे रहे हैं, सभी चिंतित हो जाते हैं। लेखक ने अपनी संवेदनशीलता का इस मोड़ पर शानदार परिचय दिया है। डॉक्टर का एक निजी जीवन होता है, एक परिवार होता है। उन्हें भी अपनी और अपनों की जान से प्यार होता है। अपनी और अपने परिवार की चिंता होती है। डॉक्टर अपने जीवन काल में किस तरह के समझौते करते हैं। डॉ. रवि न्यूयॉर्क चले जाते हैं अपना फ़र्ज़ निभाने, डॉ लता अपने शहर में और बच्चे कैलिफोर्निया में ज़िम्मेदारी के चलते समय की कमी के रहते जल्दबाज़ी में एक फ़ोन कॉल पर संक्षित बातचीत के जरिये ही एकदूसरे का हालचाल जानकर फिर से अपने-अपने काम में लग जाते हैं। संवादों और कॉल्स के द्वारा लेखक ने इस डॉक्टर के जीवन के दृश्यों को सजीव किया है। भगवान् के बाद दूसरा स्थान डॉक्टर का होता है, वह जान की रक्षा करते हैं और कोरोना काल में डॉक्टरों की कीमत विश्व समझ चुका है। ज़िम्मेदारियों के दबाव में, इस काल में कई डॉक्टर अपने स्नेहजनों से दूर रह कर भी फ़र्ज़ निभा रहे हैं। सैनिक और डॉक्टर दोनों देश के लिए जीवन न्योछावर कर देते हैं।

डॉ. रवि के जाने के बाद अकेली रह गई डॉ. लता अपने मरीज़ों को देखने का काम फिर से शुरू करती हैं साथ ही हॉस्पिटल्स की मदद के लिए मास्क की आपूर्ति का बीड़ा उठाती हैं, होमलेस लोगों के लिए किचेन सूप में खाना भिजवाने से लेकर कई सामाजिक कार्यों को अंजाम देती हैं और निस्वार्थ सेवा करती हैं। भारत में कोरोना काल में दवाइयों की कालाबाज़ारी, बीमारी की आड़ में राजनीतिक पार्टियों का अपना पैंतरा खेलना, छिछली राजनीति, अराजकता, भ्रष्टाचार, भुखमरी, ग़रीबी, प्रवासी मज़दूरों का पलायन, किसानों का आंदोलन, पेट्रोल के आसमान छूते भाव, आम जनता की परेशानी, रोज़मर्रा के सामानों की आपूर्ति में कमी, डॉक्टरों का दर्द, हस्पतालों में मरीज़ों के लिए पर्याप्त स्थान न होना, तंगी, परेशानियाँ, ख़ौफ़, डर और मौत का कहर, श्मशान में दाह संस्कारों के लिए दिनों की प्रतीक्षा, कोरोना मरीज़ों का मौत के बाद सामूहिक दाह संस्कार, अंत समय में अपनों के हाथ पानी का एक घूँट भी नसीब न होना, सड़कों पर चीखते -चिल्लाते मदद की भीख माँगते लोग अमेरिका में हमने यह सब समाचारों में, टीवी पर, अख़बारों में, सोशल मिडिया पर देखा -सुना। कुछ लोगों ने इसका फायदा अपने स्वार्थ के लिए उठाया, कुछ ने नि:स्वार्थ भाव से सेवा की। अमेरिका में कोरोना काल में पिछले डेढ़ साल में जो घटा, जो परिस्थितियाँ रहीं जिनका सामना लोगों ने किया, कैसे मदद के लिए लोग आगे आए, कैसे राजनीतिक पार्टियों ने सिर्फ और सिर्फ अपना स्वार्थ देख अपना उल्लू सीधा करना चाहा, अपना फायदा चाहा, राजनीतिक उथल-पुथल, लोगों का बदलता आचरण, गिरता चरित्र, चकित कर देने वाला व्यवहार, उसका जीवन पर असर इन सभी का चित्रण लेखक ने बख़ूबी बहुत सटीक और सहज किया है, इस कारण यह उपन्यास आने वाले समय में एक कालजयी उपन्यास बन जाएगा। आज पाठक इस उपन्यास से स्वयं को पूरी तरह से जुड़ा हुआ पाता है, उन कष्टों का वह स्वयं भुक्तभोगी जो रहा है। मैं स्वयं मास्क बनाने, फण्ड रेज़िंग, राशन आपूर्ति, स्कूल में शिक्षिका के तौर पर और कम्युनिटी में कई प्रोजेक्ट्स से जुड़कर अपना योगदान दे रही हूँ। इस मुश्किल काल में सेवा से भीतर पॉसिटिव ऊर्जा का संचार होता है। लेखक ने कई मुद्दे उठाते हुए स्वार्थी नेता, लोग, राजनीतिक पार्टियाँ को आड़े हाथों लिया है।

डॉ. लता की कहानी के समान्तर तीन कहानियाँ अब जुड़ती हैं जब डॉ. लता अपने मरीज़ों की मदद के लिए आए फ़ोन कॉल्स की वजह से उन्हें याद करने की कोशिश करने के लिए अपनी डायरी के पन्ने पलटती है और इंडिया से आई तीन स्त्रियाँ डॉली, सायरा और दक्षिण भारत की रानी उर्फ़ दासी की कहानियाँ उनके सामने खुलती हैं। एक-एक कर सामने आती कहानियों में कई-कई चौंकानेवाली बातें, घटनाएँ, त्रासदियाँ, तथ्य, विचित्र परिस्थितियाँ, मानवता को शर्मसार करती घटनाएँ, कांड उनके पीछे छिपीं दुर्भावनाएँ, मनोविकार, मनोवैज्ञानिक तथ्य, घृणित सोच, मनोरोग, मानसिक परिस्थितियाँ और उनसे उत्पन्न हुए दुर्घटनाएँ, पीड़ा, दु:ख, नारी चरित्र पर उठते सवाल, नारी उत्पीड़न की दांस्ता, नारी सम्मान को रौंदती पुरुषसत्ता, पुरुषार्थ के दंभ में नारी को दी जाती शारीरिक और मानसिक यातना और उनका उनके जीवन पर, उनके परिवार पर असर, नारी के दैहिक शोषण, मानसिक यंत्रणा, सामूहिक बलात्कार, पति द्वारा बलात्कार, एसिड अटैक जैसे घिघौने कृत उनके पीछे राजनीतिक ताकतें, गुंडागर्दी, पैसे का लालच, पुरुष का अहं, शक, संदेह, अविश्वास जैसे कई घटनाक्रम कहानियों को आगे बढ़ाते हैं। क्या लेखक का यही उद्देश्य था नारी उत्पीड़न की चंद कहानियाँ गढ़ना ? ऐसी कहानियाँ लिखने में सुधा जी माहिर हैं। वह अपनी लेखनी से घटना क्रमों को अंजाम देकर कहानी में कुछ इस तरह से क़िस्सागोई लाती हैं; जिससे पाठक यक़ीन करने लगता है यह

वास्तविक घटना है। एक बहुत जटिल अछूते विषय को चुनकर उस पर बहुत पुख्ता वैज्ञानिक तथ्यों और जानकारी के आधार पर, एक ठोस धरातल पर एक ऐसा उपन्यास लिखा हैं जो न सिर्फ समस्या, समाधान और विकल्प सुझाता हैं वरन् गहन अध्ययन के विषय को अति सरल, सहज भाषा में सम्पूर्ण जानकारी के साथ लिख पानी की तरह आसान कर बहाया है। अपनी तरह का, इस तरह का पहला उपन्यास हिन्दी साहित्य को सौगात में दिया है, जो आगे जाकर हिन्दी साहित्य की एक बेजोड़ धरोहर बन जाएगा।

इस उपन्यास के माध्यम से सुधा जी ने कई अनछुए छोरों को छूने की कोशिश की है। एक ओर मानसिक यातना, पीड़ा, तनाव का मानव मस्तिष्क पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, मनुष्य अपने सोचने-समझने और निर्णय लेने की शक्ति खो देता है, मनोबल खो देता है साथ ही उसके मान-सम्मान से हुए बलात्कार की वजह से जीने की चाह भी खो देता है। कई बार आक्रोश से भर जाता है। सारी दुनिया से बदला लेना चाहता है या निराश हो अवसाद में चला जाता है। उसकी अवहेलना और उपेक्षा करने से नकारात्मक ऊर्जा उसके भीतर भर उसे संचालित करने लगती है। मानव के स्वास्थ पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है, वह मानसिक रोगी हो सकता है, उसके शरीर में अन्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। मानसिक तनाव अदृश्य रहकर जब पीड़ित को रोगी बना देता है तब दृश्य में इसका असर समझ में आता है। उसी तरह अदृश्य वॉयरस, अदृश्य शक्ति बन जब मानव जाति पर हमला करते हैं, दृश्य में महामारियों का आकर ले लेते हैं, मौत अपना खेल खेलने लगती है और मनुष्य इस अदृश्य शक्तियों के आगे बेबस हो जाता है भयभीत होता है, अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करता है जैसे अभी कर रहा है। समय-समय पर ऐसी कई महामारियाँ, प्राकृतिक आपदाएँ मानव के अस्तित्व को चुनौती देती आईं हैं। उपन्यास में कहानियों के पात्रों के जीवन में भी त्रासदियों से कुछ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है।

कहानी कह जाना, या लिखना, कहानी के पात्रों का दर्द उकेरना, कहानी में पात्रों के जीवन की डार्क साइड को बयान करना एक अगल विद्या है; लेकिन उन पात्रों की जीवन कहानी के पीछे छिपी उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिती उससे जुड़ी जटिलताओं का, वैज्ञानिक कारणों का और मेडिकल कारणों का विश्लेषण कर सरल भाषा में विस्तृत विवरण इस उपन्यास को बेजोड़ बनाता है। इस विषय पर लेखक ने महारत हासिल की है। नारी उत्पीड़न के पीछे दकियानूसी सामाजिक और मानसिक सोच ही नहीं यह एक मनोविकार है, मानसिक रोग है। इन मनोविकारों को सोसाईटी कई बार समझ नहीं पाती। कर्मों के नियम के अनुसार अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा लेकिन कई बार स्त्रियों के विरुद्ध किया गए अपराधों का बुरा फल बेकसूर स्त्री को ही ताउम्र भोगना पड़ता है और अपराधी साफ़ बचकर निकल जाते हैं। उसका जीवन बर्बाद हो जाता है। पीड़िता कीमत चुकाती है और अपराधी आज़ाद घूमता है लेकिन कई अदृश्य शक्तियाँ हैं जो अपना काम कर जाती हैं, उनकी लाठी जब पड़ती है उसमें आवाज़ नहीं होती। कहानियाँ "बोलती बेनूर आँखें " और " "रानी या दासी " में लेखक ने इसी के पुख़्ता प्रमाण दिए हैं।

इस उपन्यास में लेखक ने कहानियों का अंत सकारात्मक रखा है। अपराधियों को उनकी असली जगह पहुँचाया है और काउंसलिंग के द्वारा पीड़िताओं की सोच बदलती है, उनका मनोबल बढ़ता है, और अन्याय के खिलाफ लड़ने की आत्मशक्ति मिलती है। उनका जीवन सँवरता है। जीवन जीने की नई आशा जाग्रत होती है, एक सम्मानजनक जीवन और तिरस्कार, अपमान, निराशा से मुक्ति मिलती है। यह एक कड़वी सच्चाई है पुरुष प्रधान मानसिकता वाले समाज में आज इक्कीसवीं सदी में भी स्त्रियों के विरुद्ध अपराधों की कमी नहीं अपितु वृद्धि हुई है। कोरोना की वजह से बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों की ख़बरों में कमी आई है लेकिन घरेलू हिंसा में वृद्धि हुई है।

कहानी की पात्र सायरा जिसे प्रेम का अनुरोध ठुकराने पर और उसकी चुनावी जीत पर दंडस्वरूप पुरुष दम्भ एवं मित्र विश्वासघात कर एसिड अटैक से उसके शरीर को कुरूप और आत्मा को छलनी-छलनी कर देते हैं, देश निकाला दिया जाता है। वह प्रतिशोध में जलती है लेकिन काउंसलिंग से सँभलती है, अंत में बहुत बड़े मुकाम को हासिल करती है, मानवता की सेवा करती है। समस्या है, समाधान है लेकिन समस्या से लड़ने के लिए सकारात्मकता ऊर्जा और सकारात्मक शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है। इंसान वह ऊर्जा अदृश्य मान सारी उम्र बाहर ढूँढ़ता है, कई सदियों से ढूँढ़ रहा है। जबकि वह ऊर्जा, वह शक्ति, वह चेतना उसके भीतर ही होती है ?

कोरोना जैसी या कोई भी विषम परिस्थितियों में ख़ुद को ठीक रखना, सकारात्मक रहना बहुत बड़ी चुनौती है। सही सकारात्मक सोच रखें, तो सकारात्मक ऊर्जा का अधिक प्रवाह होगा, वातावरण में भी सकारात्मकता आएगी, सकारात्मक परिणाम होगें। जैसे कहानी डॉली पार्टन में लेखक ने डॉली से उसके पति को अंत में क्षमा करवाया है। क्षमादान से सकारात्मक ऊर्जा बढ़ती है। गाँधीजी ने कहा है आँख के बदले आँख से लेने से सारा विश्व अँधा हो जाएगा। उपन्यास के अंत में परिवार के सदस्यों को कोरोना हो जाने पर भी डॉ. लता एक सकारात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। सकारात्मकता की कला क्या उनके पेशे से वह सीखी हैं? तो क्या सिर्फ पेशा आपको जीवन के सारे अमूल्य पाठ पढ़ा देता है ? यही एक पहेली है और सुधा जी ने इस पहेली को सुलझाते हुए मानव को एक नई फिलासॉफी दी है।

इस उपन्यास का प्रभाव भीतर तक झंझोड़ता है। मानव मन और मस्तिष्क का मनोविज्ञान, उसकी कई परतें, गाँठें खोलने में, समझने में एक सच्चा सार्थक प्रयास, नई सोच, नई समझ, नई शक्ति से, नई पॉज़िटिविटी से भरता है, मार्गदर्शन करता है, भीतर ही भीतर झाँकने पर उकसाता सकारात्मक कैसे रहो सिखलाता लेकिन कई विडम्बनाओं को उघाड़ता। लेखक ने हर नारी पात्र के दर्द को बख़ूबी और इतनी बारीकी से

उकेरा है यक़ीन नहीं होता मानवता के क्रूर दुश्मन किस कदर समाज में बसते हैं आस-पास। औरत कितना दर्द सहे ? बर्बरता की हदें क्या होती है, सामूहिक बलात्कार अपने जेठ और देवरों द्वारा, माँ की मिलीभगत उस कांड में, पति द्वारा शोषण, सास जान कर भी अनजान और उसमें शामिल, माता-पिता कोई ध्यान नहीं देते, वहीं एसिड अटैक की पीड़िता जिसकी ग़लती भी क्या थी, बस एक प्रेम अनुरोध ठुकराया। भारत में शादी के, रिश्तों के, रस्मों की, प्रथाओं की, दोहरी मानसिकता की, घिघौनी सोच की, पति -पत्नी के रिश्ते, आपसी प्यार और विश्वास की सच्चाई के खोखलेपन पर कई-कई ज्वलंत प्रश्न उठाता और समाज से उत्तर और नारी के लिए न्याय माँगता हर मुद्दे को आवाज़ देता उपन्यास पाठकों को अपनी ओर खींचने में, सोचने पर मज़बूर करने में पूरी तरह सफल रहा है। उपन्यास का दूसरा पक्ष हर पीड़ित स्त्री अपने विरुद्ध हुए अपराध के लिए ज़रूरी नहीं है क्षमा का भाव ही रखे। अवसर व ताकत मिलने पर वह प्रतिकार भी करना चाहती है। सायरा की कहानी में उसका गुस्सा, रोष जायज़ है। लेखक ने इशारे में औरत के दूसरे रूप को भी प्रस्तुत किया है।

लेखक ने सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, मनोविज्ञान, चिकित्सा, पर्यावरण, प्रकृति, कोरोना काल की हर समस्या, हर दृश्य, हर पहलू पर प्रकाश डाला है। महामारियों के इतिहास से लेकर मानव संघर्ष इतिहास की जानकारी दी है। भाषा में सरल, सहज हिन्दी के साथ अमेरिका की पृष्ठभूमि के अनुसार अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग हिन्दी उपन्यास में कर, यहाँ की पृष्ठभूमि और वातावरण को भलीभाँति रचा है, न्याय किया है। अमेरिका में भारत के कई प्रांतों से आकर लोग बसते हैं। कई प्रांतों ख़ासकर दक्षिण से आए भारतीयों को हिन्दी भाषा समझ में नहीं आती और वार्तालाप की औपचारिक भाषा अंग्रेज़ी ही रहती है। तब साहित्य की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास में अंग्रेज़ी का प्रयोग न्याय भी करता है।

अमेरिका में 40 प्रतिशत लोग दिहाड़ी मज़दूरी करते हैं और कोरोना काल में कैसी मुसीबतों का सामना कर रहे हैं, इसका विवरण लेखक ने बहुत बारीकी से किया है। लोग सब जगह एक जैसे होते हैं, स्वभाव मूलत: एक जैसे होते हैं लेकिन सिर्फ जगह बदल जाती है। कई बार जगह बदलने के बाद भी सोच दकियानूसी ही रहती है। कई भारतीय परिवार अमेरिका में लम्बे समय पहले आकर बस गए फिर भी उनकी सोच वही की वही देहाती है। क्या पश्चिम में रहने और पाश्चात्य शैली में वस्त्र धारण कर जीवन शैली बदलना काफी है, सोच और दृष्टिकोण बदलना अनिवार्य नहीं ? लेखक का यह प्रश्न भी गंभीर सवाल खड़े करता है। औरतों के विरुद्ध घरेलू हिंसा के मामले यहाँ भी बहुत हैं।

सुधा जी का एक और अनोखा प्रकृति के साथ किया गया प्रयोग जिसमें आकाश के विभिन्न रंगों की विविधता और बदलते रंगों से डॉ. लता के मन की दशा, व्यथा को दर्शाया है। उपन्यास की लेखन शैली जिसमें रहस्य और रोमाँच भी है, आत्मा वही सुधा जी की लेखनी की ही है। हर पात्र को उभारने में सुधा जी ने पूरा न्याय किया है, पाठक कहीं भी उलझता नहीं है। उपन्यास का बौद्धिक स्तर उच्च होकर भी सरल, रुचिकर भाषा की वजह से पाठक के हृदय में सहजता से उतर जाता है और अंत तक रुचि बनी रहती है। एक अध्याय में डॉ. लता भारत में बहन से बात करती है और भारत के हालातों का ज़िक्र होता है। कभी वर्तमान में, कभी अतीत से गुज़रता भारत और अमेरिका दोनों धरातलों पर संतुलन बनाता यह उपन्यास जब अपनी यात्रा समाप्त करता है तब एक सकारात्मकता पर अंत होता है जो मानस पटल से उठकर आसमान की असीम गहराइयों को छूता है।

बिना अधिक ज्ञान और प्रवचन बाँचे, वैज्ञानिक तत्थों पर आधारित, कई गुत्थियों को सुलझाता, जिन्हें समझना एक बड़ी पहेली, अनिवार्य है जिसे पढ़ना, एक सराहनीय और पठनीय उपन्यास। "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" अपने शीर्षक को सार्थक करता है और कवरपेज़ पर बनी ख़ूबसूरत पेंटिंग जिसमें कई परतों से उभरकर एक बीज अंकुर हो पौधे का रूप धारण कर रहा है, एकदम सही तालमेल बैठता है। प्रकृति की एक ऐसी नब्ज़ को लेखक ने पकड़ा है, जिसे आधार बना जीवन की कहानियों के उतार -चढ़ाव, उनकी बीमारी, उनका इलाज उस नब्ज को पकड़ कर किया है। यह लेखक की लेखनी की कुशलता और सक्षमता का परिणाम है। आकाश के विविध रंग और छटाओं से सभी संभावित मन: स्थितियों को दर्शाया है, घर की एक बालकनी से प्राकृतिक जीवन से मानव जीवन के हर संभव रंग को लेखक ने अपनी कलम से कैनवास पर उतारा है।

यह उपन्यास मन -मस्तिष्क की कई परतों को उधेड़ कर मनुष्य को अपने भीतर झाँकने, अपने आप को समझने का, अपने आप को महसूस करने का, अपने आप से बात करने का और अपने भीतर छिपी ऊर्जाओं के भेद से साक्षात्कार का सुनहरा अवसर प्रदान करता है।

000

सकारात्मक बने रहने की प्रेरणा

अशोक प्रियदर्शी

कहने को यह उपन्यास एक डॉक्टर दंपति की कहानी है, डॉ. रवि भार्गव एवं डॉ. लता भार्गव, जो हैं तो मूलत: भारतीय किन्तु अब अमेरिका में रहते हैं। वहाँ का भारतीय समुदाय इनका अत्यंत प्रशंसक है। इस दंपति के दो बच्चे हैं, बेटा रविश और बेटी लतिका ये दोनों भी डाक्टर हैं और क्रमश: उनकी पत्नी और पति भी। भार्गव दंपति ने लंबी सेवा के बाद अब सेवा-निवृत्ति ले ली है। उन्हें पोते-पोती, नाती-नातिन का इंतज़ार है और बच्चों के साथ वे शेष जीवन का आनंद लेना चाहते हैं। हाँ, यह बताने को रह गया कि डॉ. लता मनोविज्ञानी हैं और डॉ. रवि शरीर विज्ञानी। बेटे रविश की पत्नी है अंकिता, बेटी लतिका के पति हैं भारत भूषण। कोरोना-काल में फिर चिकित्सीय सेवा से जुड़ जाते हैं डॉ. भार्गव कोरोना-संक्रमितों की सेवा करते-करते वे स्वयं भी संक्रमित हो जाते हैं। लौटकर वे घर में एकांतवास में रहते हैं। बेटी भी संक्रमितों की सेवा से जुड़ी ही है। अंत में सब रोग से उबर जाते हैं। कोई अँधेरा ऐसा नहीं जो हटे नहीं,

कोई बुरा समय ऐसा नहीं जो टले नहीं। और इस लंबी कथा का समापन होता है इन पंक्तियों के साथ-"टीवी पर समाचार सुनाई दिया, कोविड-19 की वैक्सीन अप्रूव हो गई और जल्दी ही सबको फ्री में दी जाएगी...."

लेकिन कहानी इतनी भर नहीं है। डॉ. लता प्रकृति-प्रेमी हैं। चिकित्सकीय जीवन में मिले मरीज़ों की कथा वे अपनी डायरी में लिखती रही हैं, कभी केस-हिस्ट्री के रूप में, कभी कहानी के रूप में। एमरली और प्रतिभा सिंह पुरानी मरीज़ों के फ़ोन आने के बाद वे उन्हें अपनी डायरी में ढूँढ़ने के लिए अपनी डायरी के पन्ने पलटती रहती हैं, तीन प्रसंगों को विस्तार से पढ़ती हैं और इस तरह से डॉ. दंपति की इस कहानी के बीच में तीन अत्यंत रोचक कहानियाँ मिल जाती हैं। डॉ. लता की एक मरीज़ जो सायरा बानो जैसी सुंदर थी, उसे अपनी डायरी में सायरा नाम से ही याद किया है उन्होंने। सायरा ने डॉक्टरी की शिक्षा ले ली है, वह परमानेंट डॉक्टर हो गई और संयोग से उसी अस्पताल में कोरोना मरीज़ों की सेवा करने में जुटी हैं जहाँ इस वक़्त डॉ. भार्गव कोरोना- रोगियों की सेवा कर रहे हैं। वह अपना परिचय देती है और डॉ. भार्गव को पहचान लेती है, वह अब भी सायरा बानो जैसी ही सुंदर है, ख़ूबसूरत आँखों वाली। सन् साठ-इकसठ में मैं कभी कोलकाता गया था और वहाँ उनकी पहली फिल्म जंगली देखी थी। जंगली फिल्म के पोस्टर्स में लिखा था- 'मैन क्रिएटेड ताज़महल, गॉड क्रिएटेड सायरा बानो!' यह प्रसंग इसलिए लिखा कि आज की वृद्धा और अब विधवा सायरा बानो को देखकर नई उम्र के पाठक शायद ही यह अनुमान कर पाएँ कि वह उन दिनों कितनी दिलकश दिखती थी। एक रोचक प्रसंग और याद आ गया, उसको भी पाठकों से शेयर करना चाहता हूँ, हालाँकि इस पुस्तक की कथा से प्रसंग का कोई लेना-देना नहीं है। बस इतना कि दीवानगी भी कैसी-कैसी होती है। मैंने जिस ऑफ़िस को उन दिनों ज्वाइन किया था वहाँ मुझसे बहुत सीनियर सहकर्मी एक रहमान साहब थे, बड़े नेकदिल, मिलनसार। उस पर नसीम बानो का नशा तारी था। राँची लौटकर मैंने रहमान साहब से उस फिल्म और सायरा बानो की बेपनाह ख़ूबसूरती की चर्चा की। रहमान साहब बोले- अच्छा! तुमको इतनी जँची तो देखूँगा। यहाँ फिल्म लगने दो। राँची में "जंगली" फिल्म लगी। रहमान साहब ने फिल्म देखी। अगले दिन ऑफ़िस में मुझसे बोले- देखा लेडी सायरा को। ठीक है, मगर यह छोकरी अपनी अम्मा को क्या छू पाएगी? पुकार फ़िल्म में इसकी अम्मी नसीम बानो के हलक में जब रोटियों के निवाले उतरते थे तो उसकी चमड़ी में बाहर से वो टुकड़े झलकते थे। नसीम बानो के आगे पानी भरेगी यह लड़की! ख़ैर। यह प्रसंग, बल्कि अवांतर प्रसंग, पाठकों को इसलिए सुनाया कि वे तब के लोगों की परेशानी को जान सकें। अब मूल कथा पर लौटता हूँ।

जैसा निवेदन मैं कर चुका हूँ, इस उपन्यास में, मूल कथा से इतर, तीन कहानियाँ हैं, मानसिक रोगियों की केस-हिस्ट्री के रूप में। मुझको नहीं पता कि लेखिका ने मनोविज्ञान की पढ़ाई की है या क्लिनिकल साइकोलॉजी से विशेषज्ञता हासिल की है या नहीं, किन्तु अपने अनुभव से मैं जानता हूँ कि मनोचिकित्सक को मनोरोगी से निकट का और विश्वास का संबंध बनाना पड़ता है ताकि रोगी या रोगियों से वे उसकी पूरी कथा सुनें और तब निष्कर्ष निकालें कि उनके मानसिक विक्षेप का कारण क्या है!- फिर थोड़ा-सा विचलन। हमारे शहर में डॉ. द्वारका प्रसाद हुआ करते थे। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान विषय में तब एमए किया था, जब फ्रायड अभी सीन पर उभर ही रहे थे। उन्होंने दूर, संभवत: देहरादून में मनोचिकित्सा करनी शुरू की। डॉक्टर हो गए। इस क्रम में मिली केस-हिस्ट्रियों के आधार पर पचासों उपन्यास उन्होंने लिखे। उस ओर के विद्यार्थी की अँग्रेज़ी- हिन्दी बढ़िया होती थी। उनका एक उपन्यास "घर के बाहर" प्रतिबंधित हो गया था। वर्षों बाद वह प्रतिबंध हटा। सज़ा यह कि इस विवादास्पद उपन्यास को प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने अपने समय के श्रेष्ठ हिन्दी उपन्यासों में स्थान दिया था, ख़ैर!

सुधा जी ने इस किताब में जो तीन कहानियाँ ली हैं, वैसी रोचक, मन को छूने और मथनेवाली कहानियाँ मैंने वर्षों बाद पढ़ीं, अद्‌भुत। मैं बताऊँ, ये तीनों कहानियाँ पढ़कर मैं मंत्रमुग्ध हो गया था। अपनी मरीज़ों एमरली और प्रतिभा सिंह का इतिहास खोजने के क्रम में डॉ. लता को ये कहानियाँ मिल जाती है। यहाँ भारत और अमेरिका के तार जुड़ते हैं और प्रवासी भारतीय महिलाओं को कैसी-कैसी यातनाओं से गुज़रना पड़ता या पड़ सकता है उसकी दास्तान हैं ये कहानियाँ। ये मरीज़ दोहराता हूँ, हैं डॉली , सायरा और रानी या दासी। इन कहानियों को पाठक स्वयं पढ़ें, ये प्रॉक्सी से पढ़ी जानेवाली कहानियाँ नहीं हैं। एक बचकानी बात करूँ? इन तीनों कहानियों ने मुझ पर ऐसा नशा तारी किया कि बैक कवर पर लेखिका सुधा जी की तस्वीर मुझको अत्यंत आकर्षक और प्यारी लगी।

थोड़ी-सी बात इस उपन्यास के शिल्प की! उपन्यास विधा बहुत मुक्त विधा है। कृष्णा सोबती की रचना "ऐ लड़की..." नई कहानियाँ में लम्बी कहानी के रूप में छपी थी। अब वह राजकमल से उपन्यास के रूप में उपलब्ध है। बहुत पहले शिवप्रसाद रुद्र की एक किताब बहती गंगा बनारस लोकगीतों की पंक्तियों वाली, बनारस के घाटों आदि से जुड़ी कई कहानियों का वह संकलन था। लोगों ने इसे उपन्यास कहा और कहा-इसका नायक बनारस है। सारी कहानियाँ मिलकर बनारस की कथा कहती हैं।

विश्वख़्यात उपन्यास "अलकेमिस्ट" में मुझको कोई तरतीब की कथा नहीं दिखी। लंबी कहानी और उपन्यास का अंतर तो फिर रह ही गया है। इसलिए यदि इस पुस्तक को उपन्यास कहा गया, तो उपन्यास है यह। यों बड़ी बात यह है कि इस कृति के माध्यम से कई पीड़िताओं की कथा सुनाती हुई सुधा जी अंतत: कोरोना के भयानक दौर के नैराश्य और ऊब, भय, से हमें उबारने का सकारात्मक यत्न करती हैं। बधाई और आभार, सुधा ओम ढींगरा जी, इस सकारात्मक पहल के लिए।

यह किताब आप पढ़ें। इसे आप एक साँस में पूरा करना चाहेंगे। यह किताब आपको नया सा स्वाद देगी, खिझाएगी चौंकाएगी, रुलाएगी, किन्तु आख़िरश: आपको भयमुक्त कर, सुकूनभरी ज़िंदगी की ओर ले जाएगी।

000

लोमहर्षक और रोमांचक
प्रमोद त्रिवेदी

"दृश्य से अदृश्य का सफर" रोचक ही नहीं, आत्मीय भी है। रोमांचकारी तो है ही। कोविड-19 की पृष्ठ भूमि में मैंने पहली बड़ी कृति पढ़ी है। बहुत तेज़ी से यह उपन्यास लिखा गया। यह तेज़ी महज इसलिए नहीं कि मौके का 'लाभ' उठा लेना है। सच्चा लेखक ऐसे लाभ के फेर में नहीं पड़ता, बल्कि स्थितियों से आवेशित होता है। बिना अभिव्यक्ति के उसकी मुक्ति नहीं (कृपया-मुक्ति को कर्म-काण्ड के रूप में ग्रहण न करें।)। कुछ करने और अपने किये को पाठक से साझा करने की त्वरा है। स्थिति की भयावहता से यह पलायन भी नहीं है, बल्कि उसकी गहराई में उतरकर कुछ "करने" और "पाने" का संतोष है। बधाई! मेरी दृष्टि में किसी भी लेखन की सफलता की कसौटी यही है कि वह अपने पाठक को कितना और किस हद तक जोड़ता है। मैं बिना किसी अतिश्योक्ति के कह सकता हूँ कि यह कृति पाठक के हाथ आने के बाद उसका चैन छीन लेती है। मेरे दो दिन इस उपन्यास के साथ कुछ ऐसे ही बीते। इस की डूब में। और यही इसकी और आपकी सफलता है।

अब दो बातें इस उपन्यास पर -पूरा उपन्यास डॉ. लता पर फोकस्ड है। सारे सूत्र भी डॉ. लता के ही हाथों में हैं इसके। वह घर में अकेली है। कठिन समय है। बच्चे भी दूर। पति सेवा-निवृत्त हो कर भी इस दुष्काल में दूर और अकेले कोविड के मरीज़ों के उपचार-अभियान में। इस मानसिकता और चिन्ताओं में घिरी डॉ. लता के पास समय काटने का साधन उनके मनोरोगियों की केस डायरियाँ हैं। इस खाली समय में वे इन्हें कहानियों में ढालने में प्रयासरत हैं। इन्हीं डायरियों के माध्यम से वह जिये गए जीवन के उन लम्हों को दुबारा जी रही है। डॉ. लता डायरी में से जिन केस-हिस्ट्री को कथा-रूप देना चाहती हैं, वे तो बिलकुल कहानियाँ ही हैं- लोमहर्षक और रोमांचक!

पूरे उपन्यास में ऐसी ही तीन डॉयरियों के ब्यौरे दिये हैं। लगभग एक से। ऐसा भी किया जा सकता था कि एक डॉयरी किसी पुरुष मनोरोगी की होती। शेष दोनों डायरियों से भिन्न तो उपन्यास अधिक वैविध्यपूर्ण होता। फिर भी भय, आंतक, क्रूरता, पाशविक व्यवहार से आहत स्त्रियाँ मनोरोगी नहीं होती, असली मनोरोगी तो वे मनुष्य हैं जो स्त्रियों पर ऐसा अत्याचार करते हैं, पर उपचार के लिए स्त्रियाँ आती हैं। डायरियों के ये अंश बेहद मार्मिक हैं। उपचार के लिए जो भी रोगी आईं, स्वास्थ हो कर गई। पर कोई हमेशा सफल ही हो, ऐसा नहीं होता। किसी डायरी के पृष्ठों में चिकित्सा की सीमा को दर्शाते यदि कहीं किसी विफलता के दंश के विवरण होते तो उपन्यास अधिक मार्मिक और संस्पर्शी हो उठता, ऐसा मेरा विचार है।

डॉ. लता और उसके पति ने चाहे सेवा-निवृत्ति ले ली हो, पर इनके सामाजिक सरोकारों में कमी नहीं आई और दोनों अपने दायित्व को कभी नहीं भूले। पति और बच्चों से दूर मोबाइल लता को जोड़े रखता है। परिन्दे, गिलहरियाँ और परिवेश उन्हें अकेला नहीं होने देता। यह डॉ. लता के व्यक्तित्व का विस्तार है। समय और स्थितियाँ उन्हें चिन्तित ज़रूर करते हैं पर अपना अकेलापन दूर करने के लिए प्रकृति का वैविध्य उनकी दिन चर्या का अपरिहार्य हिस्सा हो जाता है। यों भी अमेरिका जैसे अत्याधुनिक देश की जीवन-शैली में यह एकाकीपन सभी के जीवन की वास्तविकता है। बाहर की व्यस्तता या एकाकीपन में इस दंपति के जीवन में आंतरिक आलोक उनकी दिशा तय करता है। यहीं इन्हें आत्म-साक्षात्कार के अवसर मिलते हैं। अद्‌भुत!!! उपन्यास ने सच में प्रभावित किया है। फिर से हार्दिक बधाई। जिसकी लेखक सुधा ओम ढींगरा पूरी हकदार हैं।

000

नई पुस्तक

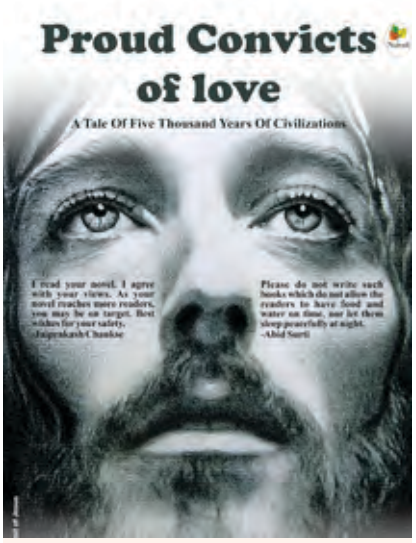

(उपन्यास)

प्राउड कन्विक्ट्स ऑफ़ लव

लेखक : पंकज सुबीर

अनुवाद : रचना त्यागी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

पंकज सुबीर के चर्चित उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" का अंग्रेज़ी अनुवाद रचना त्यागी ने किया है। यह उपन्यास शिवना प्रकाशन से "प्राउड कन्विक्ट्स ऑफ़ लव" के नाम से प्रकाशित होकर आया है। पंकज सुबीर का यह उपन्यास वर्ष 2019 में प्रकाशित होकर आया था, तथा प्रकाशन के बाद से ही इस पर लगातार चर्चाएँ होती रही हैं। अंग्रेज़ी में इस उपन्यास की माँग को देखते हुए शिवना प्रकाशन ने उपन्यास का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया है। पाँच हज़ार सालों की मानव सभ्यता तथा धर्म और साम्प्रदायिकता के जटिल प्रश्नों का उत्तर इस उपन्यास में तलाशने की कोशिश लेखक ने की है। विषय के कारण ही इस उपन्यास को अंग्रेज़ी में लाने की माँग हो रही थी। शिवना प्रकाशन द्वारा बहुत जल्द उपन्यास का उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित किया जाएगा, जो ज़ेबा अलवी द्वारा किया गया है।

000

केंद्र में पुस्तक

(कहानी संग्रह)

हमेशा देर कर देता हूँ मैं

समीक्षक : डॉ. रमाकांत शर्मा, सूर्यकांत नागर, डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं.3, चेम्बूर
मुंबई - 400089
सूर्यकांत नागर
81, बैराठी कालोनी नं. 2
इन्दौर, (म.प्र.) 452001
मोबाइल- 9893810050
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल,
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48
मोबाइल- 9868182835

डॉ. रमाकांत शर्मा

सूर्यकांत नागर

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

जीवन की सच्चाइयों से रू-ब-रू कराती कहानियाँ

डॉ. रमाकांत शर्मा

कहानी ने एक लंबा सफ़र तय किया है। फैंटेसी में डूबी रहने वाली कहानी अब आसपास की दुनिया और पूरी सृष्टि को समझने की कोशिश का पर्याय बन गई है। आज की कहानी मनुष्य के मन की अतल गहराइयों में उतर कर उसकी सुप्त संवेदनाओं को झकझोरने का काम कर रही है। इस संदर्भ में जानेमाने कथाकार पंकज सुबीर का कहानी संग्रह "हमेशा देर कर देता हूँ मैं", एक महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है। इसमें संग्रहीत कहानियाँ जीवन की सच्चाइयों से रू-ब-रू कराती हैं। हर कहानी ज़िंदगी की एक नई परत खोलती लगती है। ये कहानियाँ पढ़कर भुला देने वाली कहानियों में से नहीं हैं। हर कहानी सोचने-समझने को मजबूर कर देती है और कुछ ऐसे सवाल खड़े कर देती है, जिनके उत्तर ढूँढ़ना ज़रूरी तो हैं, पर आसान नहीं।

"हमेशा देर कर देता हूँ मैं", कहानी शुरू होती है लेखक के बचपन के दोस्त ज़फ़र के उस मैसेज से जो एक यूट्यूब का वीडियो लिंक है। एक महिला के फोटो के थंबनेल के साथ लिंक है और रोमन में लिखा है – "हमेशा देर कर देता हूँ मैं।" महिला की डबडबाई आँखें और उदास चेहरा उसे इस वीडियो की तरफ आकर्षित करता है। फिर वीडियो में नियाज़ी साहब की नज़्म – 'ज़रूरी बात कहनी हो, कोई वादा निभाना हो/उसे आवाज़ देनी हो, उसे वापस बुलाना हो/हमेशा देर कर देता हूँ मैं' लेखक को डिस्टर्ब कर देती है। उसके अवचेतन में नियाज़ी साहब के शब्द हैं, पर उसके ज़ेहन में उभर रहा है एक सतरह-अठारह साल का लड़का ....एक गाँव.....और कुछ चेहरे .....गाँव उसी का है और लड़का भी वह ख़ुद है और नज़र आ रहे चेहरे भी उसके अपनों के चेहरे हैं।

उसे याद आता है, वह दोस्तों के साथ गाँव की नदी में नहाने के लिए जाता था। वे संग-साथ में मस्त होकर नहाते। घर से कपड़े लेकर नहीं आते थे, उन्हीं को सुखाकर फिर से पहन लेते। पर, उनकी मस्ती में नदी के आसपास भटकते बबलू नाम के उस पागल से खलल पड़ता रहता था और वे डर जाते थे। एक बार तो बबलू एकदम उसके पास आ गया और उसे जकड़ लिया था। वह बड़ी मुश्किल से उससे बचकर भागा था। उसके दो-तीन दिन बाद ही बबलू नदी में डूबकर मर गया। पर, उसके किस्से कहानियाँ उसे ज़िंदा रखे हुए थे और बच्चों में उसके अदृश्य वजूद का डर समाया रहता था।

वहीं नदी पर मिलती थी अपनी एड़ियाँ साफ करती लम्बी चाची। बचपन में लम्बी चाची ने उसे कई बार नहाने के बाद अपने कपड़े सुखाते समय निपट वस्त्रहीन देखा था, पर उस दिन जब वह उसे अचानक वैसे ही नहाने के बाद अपना अंडरवियर सुखाते देख लेती है, तो वह शर्मसार हो जाता है। अब वह बच्चा नहीं था, जवानी की दहलीज पर कदम रख चुका था। तभी लम्बी चाची ने कहा था- "चल-चल, अब शरमाए मत, कपड़े पहन और घर जा, शाम हो रही है।" यह कहते हुए वह हँसकर चली गई थी।

चाचा की अनुपस्थिति में लम्बी चाची जब उसे अपने घर लेकर गई और उसके शरीर से खेलना चाहा, तो उसे ऐसा लगा जैसे लम्बी चाची के शरीर में बबलू की आत्मा आ समाई हो।

वह लम्बीबी चाची के तमाम अनुनय-विनय को ठुकराकर घबराकर वहाँ से भाग आया था। घर आने के बाद उसके सामने वे आँखें घूमती रहीं जिनमें मिन्नत भरी हुई थी और वह उन हाथों का स्पर्श महसूस करता रहा जो अकुलाकर उससे लिपटे हुए थे और जिनको वह बेदर्दी से झटककर चला आया था।

उसके दोस्त ज़फ़र ने वह सब सुनने के बाद कहा था – "तू कल अगर भागता नहीं, कुछ कर आता, तो बात इतनी ख़राब नहीं होती, जितनी अब हो गई है। अब वह ग़ैरत की आग में जल रही होगी"। वह अजीब पशोपेश में पड़ गया था। उधर ज़फ़र उससे कह रहा था – "जा, जाकर अपनी ग़लती सुधार आ"। पर, वह सिर्फ इतना ही कह पाया था – "आज नहीं, मैं बाद में कभी मौका देखकर चला जाऊँगा, आज हिम्मत नहीं हो रही"। पर, देर हो चुकी थी, अगले दिन ही नदी के बंधान में लम्बी चाची की लाश तैरती हुई मिली थी।

"बेताल का जीवन कितना एकाकी" कहानी पिछले तीस-पैंतीस वर्षों के दौरान उभरी अलग तरह की समस्या को रेखांकित करती है। सत्तर-अस्सी के दशक तक बहुत कम लोग इस तरह की समस्या से जूझ रहे थे, पर आज यह समस्या आम बन गई है और यह समस्या है, संतानों के होते हुए भी बुढ़ापे में एकाकीपन से जूझने की। इस कहानी में एक बूढ़ा है जो हमेशा तालाब के किनारे लकड़ी वाले फूलों के पेड़ के नीचे जड़ों पर अधलेटा होकर बैठा रहता है। यह उस बूढ़े की स्थायी बैठक है। वह निस्पृह सा बैठा रहता है, ना किसी की ओर देखता है और ना ही किसी से बात करता है। किसी को फर्क भी नहीं पड़ता कि वह वहाँ बैठा है। रोज़-रोज़ उसे वहाँ आते और बैठे देखकर संदीप उत्सुकतावश उसके पास जाता है। बड़ी मुश्किल से वह उसका ध्यान अपनी ओर खींच पाता है। उस बूढ़े की कहानी उन लोगों की त्रासदी की कहानी है जो अपना सारा जीवन होम कर बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं और जब वे विदेश जाकर पढ़ने और फिर कमाने के लिए वहीं बस जाते हैं तो उनके पास निपट अकेलेपन में ज़िंदगी जीने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं बच रहता। मन को तसल्ली देने के लिए वही बहाने हैं – "बच्चे अपनी ज़िंदगी में सैटल हो गए हैं, उनकी ज़िंदगी व्यवस्थित हो गई है।" पर, प्रश्न बड़ा है- "उनकी ज़िंदगी तो व्यवस्थित हो गई, मगर हमारा क्या? एमएनसी को गुलामों की ज़िंदगी का कंट्रोल मिला और गुलामों को डॉलर्स मिले, हमें क्या मिला, हम तो उजड़ ही गए"।

बूढ़े की मुखर होती पीड़ा किसी को भी व्यथित कर सकती है – "क्यों जाऊँ मैं, मैं ही क्यों जाऊँ.....हम लोग जो साठ से नब्बे के बीच पैदा हुए, हम बहुत मूर्ख हैं.....इमोशनल फूल्स.... हम जड़ों से उखड़ना नहीं चाहते। नब्बे के बाद पैदा हुए तुम लोग इमोशनल नहीं हो, मूर्ख नहीं हो। तुम लोग अंदर से सूखे हुए हो। हमें हमारे माँ-बाप ने पैदा किया था, तुम्हें एमएनसी और बाज़ार ने पैदा किया है। .... बेताल होने का मतलब ही अभिशप्त होना है। मरकर गुफाओं में ही दफ़न होना होगा जहाँ हमसे पहले के बेताल दफ़न हैं।" यह कहानी एकाकीपन की आँच में झुलसते बुज़ुर्गों के बेपनाह दर्द पर जब उँगली रखती है तो पाठक को भी वह दर्द महसूस होने लगता है।

"मर... नासपीटी..." एक जज़्बाती कहानी है। हलीमा और ज़रीफ़ा दोनों के परिवारों के बीच अच्छे संबंध हैं, रिश्तेदारियाँ हैं, बच्चों में, आदमियों में अच्छी दोस्ती है मगर अपने-अपने कारणों से इन दोनों के बीच दुश्मनी का ऐसा रिश्ता है जिसमें गंदी-गंदी गालियाँ हैं और तमाम तरह की बद्दुआओं की बरसात है। मोहल्ले के लिए यह रोज़ाना का तमाशा है। दोनों ने अपने-अपने तरकश में पैने और गहरी मार वाले तीर रखे हैं, ऐसे तीर जो एकदम कलेजे में जाकर धँस जाते हैं और तीर खाने वाला छटपटाकर, तिलमिलाकर रह जाता है। लेकिन, जरीफा की बेटी रुखसाना के ग़ायब होने और इस बात को सभी से छुपाकर रखने के प्रयास में उसके द्वारा उठाए गए उस अजीबोग़रीब कदम में हलीमा का भी शामिल हो जाना एक ऐसी जज़्बाती पहल थी, जिसने उसकी सबसे बड़ी दुश्मन को उसके सामने घुटनों के बल बैठा दिया और वह बिना आवाज़ रोती रही थी।

कहानी "खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ भावांतर" जनता की भलाई और कल्याण के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों का सरकारी कारिंदों, व्यापारियों और बैंककर्मियों द्वारा मिलकर बेजा इस्तेमाल करने का शर्मनाक बयान है। किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए बनाई गई योजना "भावांतर" कठोर परिश्रम करने और तमाम तरह के कष्ट उठाकर फसल तैयार करने वाले किसानों के लाभ के लिए बनाई गई है। अगर उनकी फसल न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम भाव में मंडी में बिकेगी तो उसमें और न्यूनतम समर्थन मूल्य के बीच के अंतर की राशि को सरकार सीधे उनके बैंक खाते में जमा करवा देगी। पर, अनपढ़ और ग़रीब किसान ऐसे असहाय और कमज़ोर चूहे बनकर रह जाते हैं जो परिश्रम करके ज़मीन खोद-खोदकर अपने रहने के लिए बिल बनाते हैं, पर जब बिल पूरा बन जाता है तब साँप आता है, चूहे को मारकर खा जाता है और फिर उसी बिल में रहने लगता है। सरकारी कारिंदें, व्यापारी और बैंककर्मी ऐसे साँप बन जाते हैं जो सरकारी योजनाओं के लाभ किसानों तक नहीं पहुँचने देते और वे लाभ ख़ुद डकार जाते हैं। शंकर साहू का यह कथन इस खेल की पूरी परतें उधेड़ता है – "मोहन जी, आज तो आपने दिन बना दिया। मैं दो दिनों से सोच रहा था कि भावांतर आ गया है, इसका क्या किया जाए। .....मुझे नहीं पता था कि इतना खेल हो सकता है इस भावांतर योजना में, आज से ही प्लानिंग करता हूँ। लेकिन, बीच-बीच में मदद करते रहिए आप भी इसी तरह....."। यह एक खुला रहस्य है कि ग़रीबों, वंचितों और कमज़ोर वर्गों के लोगों के लिए बनाई गई सरकारी योजनाओं का लाभ शायद ही कभी उन तक पहुँच पाता है। ऐसे साँपों के रहते पहुँच भी पाएगा कभी.... कौन कह सकता है।

झूठी शान के लिए रिश्तों और जमीर तक को गिरवी रख देने की कहानी है "मूंडवेवालों का जलवा"। मारवाड़ के मूंडवा कस्बे से लाए गए छज्जूमल जी के पूर्वज मूंडवेवाले कहलाने लगे थे। यह नाम छज्जू जी के

लक्कड़ दादा के साथ जो लगा तो फिर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता ही गया। अपने पुरखों के व्यापार को अपनी मेहनत से छज्जूमल जी ने तीन गुना कर लिया। बुढ़ापे की दहलीज़ पर कदम रखते ही उन्होंने अपने तीनों बेटों के हाथ में अलग-अलग बागडोर सौंप दी। सबसे छोटे बेटे के मन में यह चाह जागी कि पैसा अपनी जगह है, लेकिन मान-प्रतिष्ठा भी होनी चाहिए। पैसों के बल पर वह विभिन्न संस्थाओं के सदस्य/संचालक मंडल में शामिल हो गया। लेकिन उसे संतोष नहीं था, वह किसी संस्था का अध्यक्ष बनकर कलेक्टर से उसकी शपथ लेते हुए अपना फोटो सुनहरे फ्रेम में मढ़ कर दुकान और घर की दीवार पर टाँगना चाहता था।

कालांतर में जब उसके इकलौते बेटे के यहाँ बच्चा पैदा हुआ तो उसने जलवा पूजन के कार्यक्रम को इतनी धूमधाम से आयोजित करने का निर्णय लिया कि बस दुनिया देखे और लोग हमेशा उसे याद रखें। "न भूतो न भविष्यति" टाइप के महोत्सव मनाए जाने की तैयारियाँ लगभग पूरी हो चुकी थीं, मेहमान आ चुके थे कि तभी छज्जूमल जी की तबीयत बहुत बिगड़ गई। कार्यक्रम रद्द करने का मतलब था इतने बड़े तामझाम, इतने पैसे लगने और ख़ास मेहमानों के आने के बाद सारा मजा किरकिरा होना। कार्यक्रम शान से संपन्न हुआ और जब नजदीक के कुछ ही रिश्तेदार रह गए तो बताया गया कि छज्जूमल जी की तबीयत काफी बिगड़ गई है। बस, क्या था सारी गाड़ियाँ महानगर के सबसे महँगे और अत्याधुनिक पाँच सितारा अस्पताल के पार्किंग में पहुँच गईं। छज्जूमल जी के लिए इतनी हबड़-दबड़ देखकर सिर्फ वार्ड ब्वॉय ही अचंभित था क्योंकि उसे असलियत पता थी। यह दिल दहला देने वाली असलियत जब पाठक के सामने आती है, तो वह स्तंभित होकर रह जाता है।

"पत्थर की हौदें और अगन फूल" वीराने में बने डोडी के विश्राम-गृह से कुछ दूर बहती नदी के किनारे पहाड़ों की तरफ एक बड़ी चट्टान की ओट में बनी मानव निर्मित हौदों के रहस्य से वाबस्ता है। जवान कलेक्टर राकेश सक्सेना को जब यह पता चलता है कि पूरे चाँद की रात में उन हौदों, अगन फूलों और वन कन्या के साथ एक विशेष प्रक्रिया से गुज़र कर नपुंसकता को हमेशा के लिए समाप्त किया जा सकता है, तो उन्हें ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ। कहानी सुनकर वे कुछ देर ख़ामोश रहे थे फिर बोले – "क्या मूर्खतापूर्ण कहानी है....? ऐसा भी होता है कहीं...?" लेकिन, वही कलेक्टर राकेश सक्सेना वर्षों बाद अपना बूढ़ा, हाँफता शरीर लिये डोडी के उसी विश्राम-गृह में पहुँच जाते हैं। पूरे चाँद की रात है और वे थके कदमों से उन्हीं हौदों की तरफ बढ़ रहे होते हैं।

क्या पानी को क़ैद किया जा सकता है? हाँ, क्यों नहीं। "क़ैद पानी" कहानी में गाँव के पोखर को गाँव के दबंग ने लोहे के बड़े से गोल पिंजरे से ढँक दिया। उसमें एक तरफ दरवाज़ा है, जिसमें ताला लगा दिया और बात की बात में पानी क़ैद हो गया। इसकी वजह से गाँव वाले पोखर के पानी का बिलकुल उपयोग नहीं कर पा रहे थे। जब कोई प्रतिरोध नहीं हुआ तो वह साल- दर- साल उस सार्वजनिक पोखर में पिंजरा लगाता रहा। इस दबंगई की वजह से गाँव की औरतों को गाँव से आधा कोस दूर तालाब से पानी भरकर लाने में बहुत परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। गाँव के सारे मर्द उस दबंग के सामने खड़े होने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे। तब गाँव में कलेक्टर के दौरे के समय सुनीता की अगुआई में गाँव की औरतों ने जो असाधारण कदम उठाया और पिंजरे से पोखर को मुक्त कराने का काम किया, वह स्त्री शक्ति को शिद्दत से रेखांकित करता है।

अद्भुत प्रेम कहानी है "वास्को-डि-गामा और नील नदी"। कॉलेज समय की दोस्त नीलोफ़र है नील नदी जो पच्चीस साल बाद उसके पास आई है। वह यानि वासु कोहली ख़ुद को वह वास्को-डि-गामा महसूस करता है जो अपनी खोजी हुई नई पृथ्वी को भोग नहीं पाया। वास्को-डि-गामा की तरह उसने भी तो नील नदी खोजी थी। वह नील नदी के डेल्टा तक पहुँचना चाहता था, उसने जो खोजा था उसे भोगना चाहता था, पर शायद धर्म और मज़हब की दूरियों ने उसे रोक दिया था। कहानी की ये पंक्तियाँ नए अर्थ खोलती हैं – "हर रिश्ता, हर जगह, हर शहर, हर देह अपनी-अपनी परिधियों के साथ होते हैं। खोज हमेशा परिधि के पार की होती है। विशेषकर जगहें और देह इनमें तो परिधि का अतिक्रमण किए बिना कुछ हासिल नहीं होता। यह जो अतिक्रमण है, यही तो अधूरापन नाम के मर्ज़ की दवा है। देह के मामले में तयशुदा फार्मेट को तोड़कर अतिक्रमण कर बाहर निकल जाने की इच्छा अधूरापन बनकर पैरों में बस जाती है और फिर हमें देह-देह भटकाती फिरती है"।

अब इस ढलती उम्र में नील नदी उसके बिलकुल पास है। उसे याद आता है कि वह नील नदी के डेल्टा तक जाना चाहता था, बरसों पहले, पर रोक दिया जाता था। नील नदी भी तो उसे अपने हिस्से का समुद्र बनाना चाहती थी। पर, वह यात्री की तरह नील नदी के डेल्टा तक पहुँचना चाहता था, इसलिए तब नील नदी ने मना कर दिया था। वह ग़लत मानती थी इसे। आज भी वह इसे ग़लत ठहरा रही है, पर वह यह कहता हुआ नील नदी के डेल्टा की तरफ बढ़ता गया कि ग़लत कुछ नहीं होता, हमारा दिमाग़ ही उसे ग़लत या सही मानता है। "नहीं यह ग़लत है...." नील नदी ने खुमार में डूबी आवाज़ में अंतिम बार कहा। कुछ भी ग़लत नहीं है, वास्को-डि-गामा ने कुछ तेज़ आवाज़ में कहा और वह नील नदी के डेल्टा में उतर गया। वह टाइम ट्रेवल करके वहाँ पहुँच गया था, जहाँ, वह कभी होना चाहता था। और नील नदी.....? अगले दिन साठ-पैंसठ साल के आसपास के एक स्त्री और एक पुरुष के शव शहर से बाहर की उस सुनसान जगह पर पाए गए। इस कहानी में रूपकों का अद्भुत प्रयोग किया गया है जिनकी गहराइयों में पाठक उतरता चला जाता है और महसूस करता चलता है अपने भीतर के बंध खुलते हुए।

"चर्च-ए-गुम" धार्मिक स्थलों को बेजा तरह से हड़पने की कहानी है। वहीं "इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी" देश के विभाजन के समय की उस असहनीय पीड़ा को ताज़ा कर

देती है जिससे लाखों लोगों को गुज़रना पड़ा था। यह कहानी है धार्मिक कट्टरता की, टूटते रिश्तों और वहशी बने लोगों की और तिरोहित विश्वास की। देश के विभाजन के समय दोनों तरफ के लोगों ने जिस असीम तबाही और दर्द का सामना किया उसने दिलों को हिला देने वाली अनेक कहानियों को जन्म दिया है। "इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी" सीमा के इस तरफ घटी एक ऐसी ही हृदय-विदारक घटना का दर्दनाक बयान है जो शरीर, दिमाग़ और आत्मा को सुन्न कर देता है। संवेदनशील कथाकार विभाजन के समय की ऐसी घटनाओं को अपनी कहानियों में शायद इसलिए ज़िंदा रखे हैं कि उनसे सबक मिले और ऐसी घटनाएँ फिर से दोहराने की नौबत न आए।

पंकज सुबीर की ये दस कहानियाँ मन को छूती ही नहीं, उसे आंदोलित भी करती हैं। पुस्तक ख़त्म करने के बाद भी ख़त्म नहीं होती क्योंकि ये कहानियाँ मनोमस्तिष्क में डूबती-उतराती रहती हैं। इतनी सशक्त कहानियों को एक जिल्द में पाठकों के सामने लाने में इतनी देर क्यों लगाई सुबीर भाई? ख़ैर..पाठकों को एक ही जिल्द में ये चुनिंदा कहानियाँ पढ़ने का अवसर देने के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। पाठक निश्चित ही इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगे और इनका भरपूर आनंद उठाएँगे।

000

क्रूर समय की समीक्षा
सूर्यकांत नागर

पिछले कुछ दशकों में जिन कथा-शिल्पियों ने कहानी के परिदृश्य को बदलने का काम किया और जिन्होंने पाठकों के बीच पहचान बनाई उनमें पंकज सुबीर एक प्रमुख नाम है। अपने विशिष्ट रचना-विधान से उन्होंने अच्छा पाठक-वर्ग तैयार किया है। अब तक प्रकाशित सात कहानी-संग्रहों के क्रम में 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' उनका ताज़ा संग्रह है। इसमें उनकी दस लम्बी कहानियाँ संग्रहीत हैं। कथा-कहन की उनकी अपनी शैली है। आकार में विशालता पा गई कहानियों में मुख्य घटना के साथ वे मनुष्य-जीवन से जुड़े अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों के लिए भी युक्ति निकाल लेते हैं। कथाकार अपने अंदर एक बड़ी दुनिया समेटे हैं। सृजन की दुनिया कहानीकार के निज के एकांत को तथा बाहर के शोर को एक कर देती है। ऐसे प्रसंग कथा-प्रवाह में बाधा पैदाकर जोड़ की तरह दिखाई नहीं देते। वे कथा के सहज अंग बन जाते हैं। वस्तुत: पंकज प्रयोगवादी कथाकार हैं, पर प्रयोगों का इस्तेमाल सजावट के लिए नहीं करते। वे जीवन के जटिल यथार्थ को सुलझे शिल्प में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियाँ इस बात का संकेत हैं कि रचनात्मक विधाएँ पैमानों में नहीं बँधती। किन दुर्लभ मार्गों से होकर पंकज की कहानी मुकाम तक पहुँचेगी, इसका अनुमान लगा पाना कठिन है। लेकिन यह सब पाठक को चौंकाने या चमत्कृत करने के लिए नहीं किया जाता। यह एक विस्फोट की भाँति होता है जो पाठक को हिला कर रख देता है। लगता है, कहानी का अंत ही उसकी शुरूआत है। संग्रह की फैंटसीनुमा कहानियाँ रचनात्मक कल्पना के माध्यम से असत्य को भी सत्य की तरह प्रस्तुत करती हैं। उल्लेखनीय है कि फैंटेसी भी सृजन का ही एक रूप है। उदय प्रकाश, असगर वज़ाहत और शशांक की कई कहानियों फैंटेसी लेखन की उत्कृष्ट मिसाल हैं।

किसी विचारधारा विशेष से आबद्ध न होने के बावजूद पंकज की प्रतिबद्धता संदेह से परे है। उन्हें पता है कि जीवन के संघर्ष में उन्हें किसके साथ खड़ा रहना है। तलहटी में खड़ा आदमी उनकी रचनात्मकता के केन्द्र में है। वे कहानियों में क्रूर समय की समीक्षा करते हैं। व्यवस्थागत विसंगतियों पर उनकी कड़ी नज़र है। परिवर्तन की छटपटाहत उनके कृतित्व में देखी जा सकती है।

शायर मुनीर नियाज़ी की नज़्म के बोल 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' के आशयों को आधार बना लेखक ने संग्रह की प्रथम कहानी की रचना की है। वस्तुत: कहानी असमंजस, नैतिकता-अनैतिकता, सही-ग़लत के बीच निर्णय-अनिर्णय की दास्तान है। युवा नायक लम्बी चाची से देह-संबंध स्थापित करने से मना कर देता है, एक अनैतिक काम मान कर। लेकिन नपुंसक पति से उपजे अभाव के कारण चाची का धैर्य और संयम जवाब दे देता है और वह युवक को बाहों में जकड़ लेना चाहती है। पहाड़ी नदी को वश में करना मुश्किल होता है। जब बाढ़ आती है तो वह किनारों को तोड़ अपने अंदर बहुत कुछ समो लेना चाहती है। लेकिन जब चाची अपनी प्यास बुझाने में असफल होती है तो बहुत शर्मिंदगी महसूस करती है। एक ओर युवक के समक्ष निर्वस्त्र होने की शर्मिंदगी, दूसरी ओर समाज के समक्ष। यहाँ कथा में चाची और युवक के अंतर्द्वंद्व का सजीव चित्रण हुआ है। लेकिन युवक को जब एहसास कराया जाता है कि प्यासे को पानी पिलाने से बड़ा कोई पुण्य नहीं। अतृप्त देह की इच्छा-पूर्ति न कर उसने भूल की है। पिंड छुड़ा, भाग कर चाची के मन को आहत किया है। उसे स्त्री की लाचारगी को समझना चाहिए था। यौनिक आकर्षण एक सहज प्रक्रिया है। इच्छा को दबाने की जितनी कोशिश की जाती है, वह उतने ही वेग से प्रतिरोध करती है।..... पंकज ने कहानी के आरंभ में बड़ी सूझबूझ से एक और सत्यान्वेषण किया है। युवा पीढ़ी किस तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए बंधुआ हम्मालों की तरह दिन-रात पिसते रहते हैं, कहानी में इसका यथार्थपदक चित्रण में हुआ है। इन युवकों का दिन का चैन और रातों की नींद उड़ी रहती है। मोबाइल, लेपटॉप में उलझे वे परिवार से कटे रहते हैं। कंपनियाँ श्रम को सेवा का नाम दे भरपूर शोषण करती हैं।

'बेताल का जीवन एकाकी' उन बुज़ुर्गों की व्यथा-कथा है जिनकी संतानें कॅरियर और बड़े पैकेज के लोभ में विदेशों में जा बसती हैं और वृद्धजन स्वदेश में एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हो जाते हैं। बच्चों के प्यार एवं सान्निध्य के लिए तरसते रह जाते हैं। जबकि युवा पीढ़ी को लगता है कि वे स्वदेश में रह जाएँगे तो सड़ जाएँगे। जिस मनोदशा से वृद्धजन गुज़रते हैं, उसका अनुमान युवाओं को नहीं होता। धनंजय को क्रिस्टोफर किट वाकर और बेताल के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत

करती यह एक उत्तम फैंटेती है।

'मर नासपीटी' सकारात्मक सोच की संवेदनात्मक कहानी है। सकारात्मकता से कुछ बेहतर करने की प्रेरणा मिलती है। मन आशा, उमंग और उत्साह से भर आता है। फुफेरी-ममेरी बहनों में कटुता और मनमुटाव का कारण यह है कि एक की शादी जिसके साथ होने वाली थी, उसे दूसरी ले उड़ी। तभी से दोनों के बीच ठनी हुई है। यह दुश्मनी अंतत: कैसे एक स्त्री और माँ की संवेदना बनती है, इसका अत्यंत प्रतीकात्मक, प्रेरणास्पद और सटीक अंत लेखक ने प्रस्तुत किया है। नासपीटी कहने में भी बहन हलीमा की सहानुभूति और साझी चिंता का भाव निहित है। उल्लेखनीय है कि 'नासपीटी' मालवी शब्द है जिसका अर्थ है जा तेरा सर्वनाथ हो, तू समूल नष्ट हो। 'खोद खोद मरे ऊँदरा, बैठे श्रान भुजंग' कहानी उस महाजनी सभ्यता का रूपांतरण है जिसका ज़िक्र प्रेमचंद ने किया था। बिल खोदता है ऊँदरा (चूहा) और उस पर अधिपत्य जमा लेता है सर्प। मिलीभगत द्वारा दूसरों के श्रम और अर्जन पर विलासिता का महल खड़ा करने का जो प्रपंच आजकल चल रहा है, उसकी प्रभावी तस्वीर कहानी में पेश है। कि कैसे हितग्राही योजनाओं के नाम पर कृषकों को भ्रमित किया जा रहा। पटवारी, महाजन, बैंक और प्रशासन सब इस गोरख धंधें में शामिल हैं। पोषक ही शोषक बने हुए हैं।

'मूंडवे वाले' झूठी शान, स्वार्थ, प्रदर्शनकारी भाव और हृदयहीनता की कहानी है जिसमें बेटा झूठी शान-शौकत के चक्कर में पिता की मृत्यु की ख़बर छिपाकर जश्न मनाता है। भय है कि समारोह के मध्य अशुभ समाचार फैल गया तो सारे किये-कराए पर पानी फिर जाएगा। जलसे की शोभा तो बाधित होगी ही, उसका निहितार्थ भी तिरोहित हो जाएगा। कल्पना कीजिए उस स्थिति का जब घर में लाश पड़ी है और बाहर लोग ठुमके लगा रहे हैं। 'क़ैद पानी' प्रतिरोध की कहानी है। प्रतिरोध के लिए जज़्बा और हिम्मत ज़रूरी है? परिस्थितियाँ जितनी प्रतिकूल होती हैं, प्रतिरोध के स्वर उतने ही तीव्र होते हैं। प्रतिरोध न होने पर ग़लत ताकतें सिर उठाती हैं। कैसी विडम्बना कि प्रकृति प्रदत्त जिस पानी पर सबका अधिकार है, उस पर चंद बलशाली अधिकार जमा लेते हैं, चाहे समस्या गाँव के जलाशय के पानी की हो या बोतल बंद पानी की। आज पानी को बोतल में क़ैदकर कमाई की जा रही है। पूँजी जल की राह की अवरोधक बन गई है।

'चर्च-ए-गुम' उस प्रवृत्ति पर प्रहार है जहाँ सम्पन्न लोग तंत्र की मिली भगत से सरकारी या अन्य भूमि पर अवैध कब्जा जमा अपना साम्राज्य फैलाते हैं। भ्रमित करने के लिए हड़पी ज़मीन पर मंदिर बना जनता की धार्मिक आस्था को भुनाते हैं। लेखकीय दृष्टि और अभिव्यक्ति कुशलता देखना हो तो यह उक्ति देखिए जहाँ व्यवसाइयों को दी जाने वाली सीख के बारे में कथाकार कहता है- 'मीठा जितना करना हो, वह मिठाई को ही करना, अपने आप को नहीं। हलवाई अगर अपना स्वभाव बदल स्वयं को मीठा कर लेगा तो उसके घर के बच्चे भूखे मरेंगे।' रचना साम्प्रदायिक राजनीति को व्यक्त करती समकाल की विचारपरक कहानी है। संग्रह की अंतिम कहानी 'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी' विद्रोह करती उस स्त्री की कहानी है जो करीब के रिश्तेदारों की बर्बरता के चलते उनसे मुँह फेर लेती है। वह जीवनभर उन्हें माफ नहीं करती। हाँ, उसे इस बात का रंज अवश्य है कि समय पर मुँह खोलती तो परिणाम भिन्न होता। उसकी एक चुप्पी ने अनेक अपराधों को जन्म दिया। 'पत्थर की हौदें और अगन फूल' संग्रह की अन्य उल्लेखनीय कहानी है।

पंकज की कहानियाँ व्यापक सामाजिक सरोकारों की कहानियाँ हैं। उनकी विचारधारा को उनकी रचनाओं में रेखांकित किया जा सकता है। पिछले दिनों जिन कहानीकारों ने कहानी के परिदृश्य को बदलने का काम किया है, उनमें पंकज सुबीर एक महत्त्वपूर्ण नाम है। उनकी भाषा में ताज़गी और सृजनशीलता है। इसमें उनकी शाब्दिक ऊर्जा बहुत सहायक है। देशज शब्दों से युक्त लोकव्यापी भाषा कहानीकार की बड़ी ताकत है। कहानियों में आंचलिक बोली के शब्द-प्रयोग से परिवेश जीवंत हो उठा है। निस्सड़ला, ऊँदरा, एबला, सपड़, लबूरना, टोर्याहोन आदि शब्दों से रू-ब-रू हो उन पाठकों की आनंदानुभूति दिगुणित हो जाती है जो इन शब्दों से वाकिफ़ हैं। प्रयोगवादी एवं बौद्धिक होते हुए थी कहानियाँ अतिकलावादी नहीं हैं। उनमें कलात्मक संयम देखने को मिलता है। वहाँ भाषा की पच्चीकारी नहीं है। पंकज बाहरी सौन्दर्य के लिए कथ्य की बलि नहीं चढ़ाते। उनकी अपनी विशिष्ट शैली है। उनकी सूक्ष्म दृष्टि हर पात्र पर अंकित है। उनका अभिप्रेत मानवीय कल्याण का है जो हर खरे साहित्यकार का होता है। संग्रह की कहानियों से गुज़रना निस्संदेह एक भिन्न किस्म का अनुभव है।

000

अधूरी ख्वाहिशों का कायांतरण
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

हिन्दी साहित्य का जाना-माना नाम पंकज सुबीर, जिसकी नवीन रचना एक कहानी संग्रह है, 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं'। इस संग्रह में कुल दस कहानियाँ शामिल हैं। पंकज सुबीर ने विभिन्न विधाओं और विषयों की विविधता से साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान कायम की। इस संग्रह में भी कई नए और विविधता लिए कथानक और पात्र मिलते हैं। ये पात्र हमारे ही समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों से हैं। शरीरिक बनावट एक होने पर भी सभी मनुष्य एक-दूसरे से बहुत अलग नज़र आते हैं। उस पर उनकी सोच, परिस्थितियों, वातावरण और संपर्क में आने वाले अनेकानेक लोगों, दोस्तों और सहकर्मियों का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। मनुष्य नामक जीव वैसे भी अत्यन्त जटिल रचना-संरचना है। हजारों वर्षों से इसे ऋषि-मुनि और देवता-पैगंबर समझ नहीं पाए। यह तब की बात है, जब जीवन सादा और व्यक्ति सरल स्वभाव का होता था, अब तो ख़ैर जाने दीजिए, इसकी जटिलता, हालात के कई दुर्गम टीलों और मन की अँधेरी कोठरियों में छिपने लगी है, जिनसे पार पाना साधरण व्यक्ति के

बस की बात नहीं। भले मनोविज्ञानी इन अँधेरी घाटियों और कोनों को कितना भी बातों से, सपनों से जानने की कोशिश कर लें, सब कुछ उनके हाथ में भी नहीं आ पाता। हाँ, अनुभव के आधार पर इस विज्ञान ने काफी तरक्की कर ली है, बावजूद इसके बहुत कुछ ऐसा रह जाता है, जो किसी की पकड़ में नहीं आ पाता। ऐसे न पकड़ में आने वाले भावों, कामनाओं, अधूरी रह गई ख्वाहिशों को अक्सर साहित्यकार पकड़ने में सफल रहता है, क्योंकि उसका रचना संसार इन जीवित चरित्रों से ही भरा रहता है। वह समाज की, वर्गों की नब्ज़ को टटोलना जानता है, इसके लिए वह स्वयं उम्र और लिंग से पार जाकर ऐसे पात्रों व चरित्रों को पूरी तरह से अपने भीतर समो लेता है। उसके बाद उनके जीवन की घटनाएँ, भाव-विकार और खोना-पाना, सब उसका अपना बन जाता है। इस कायातंरण से जो रचना सामने आती है, वह एकदम सजीव हो उठती है। जो रचना इतने सजीव चरित्रों और घटनाओं के ताने-बाने से बुनी हो, वह अपनी जीवतंता से पाठकों के दिलों को सीधे जाकर छू लेती है। साहित्यकार वही सफल रहता है, जो जितनी सूक्ष्मता से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दिखाई देने के पीछे की अवधारणा का अवलोकन कर, उसे ग्रहण कर लेता है। इस संदर्भ में पंकज सुबीर को सफल रचनाकार कहा जाता है, जो घटनाओं और भावों के पीछे छिपे संदर्भों को अपनी अंतर्दृष्टि से पकड़ने और पाठकों को समझाने में सफल रहता है।

संग्रह के शीर्षक की कहानी 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' मुनीर रियाज़ी की मशहूर नज़्म को केन्द्र में रखकर रची गई है। कहानी का आरंभ आज के तकनीकी युग में युवाओं के मशीनी होती जाती ज़िंदगी से होता है। जहाँ मुख्य पात्र मनीष, समय के पल-पल को उपयोग करने से बढ़ कर, उसका दोहन करती ग्लोबल कंपनियाँ में युवाओं का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ मैसेज की हल्की आवाज़ सुनना और उस का प्रत्युत्तर देते हुए उस पर अमल करना, जीवन का हिस्सा बन गया है। जो कहानी तकनीक और भौतिकवाद की तेज़ रफ्तारी का हिस्सा लगती है, वह अचानक से पलटी मार कर, पाठकों को कहीं और समय, परिवेश और संवेदना के उस तल पर ले जाती है, जहाँ समय ठहर सा जाता है। यह कायाकल्प होता है, वीडियो द्वारा भेजी गई एक नज़्म द्वारा। इस वीडियो द्वारा नज़्म को सुनते हुए, मुख्य पात्र कहीं खोने लगा। फिर उसी नज़्म को उसने वीडियो बंद कर, केवल सुना और सुनते-सुनते वह अपने जीवन की उस घटना तक जा पहुँचा, जो किशोरावस्था से जवानी की पहली दहलीज़ से वाबस्ता थी। जब गाँव में हमेशा दोस्तों के साथ नहाने के बाद वे नग्न होते और हँसते-खिलखिलाते थे। दोपहर के समय नदी के पास की उन सुनसान झाड़ियों में एक बार अकेले होने पर उसे बबलू ने कसकर अपनी जकड़ में लिया था। उस दिन गीला अंग-वस्त्र बदलते हुए, गाँव की लम्बीचाची ने। जिसे बरसों से सभी नदी किनारे बैठ कर एड़ियाँ रगड़ते देखते आए थे। नि:संतान चाची को सारा गाँव लम्बी चाची कह कर पुकारता। उसी रात जब सारा गाँव मुकेश के घर दावत पर मौजूद था। लम्बी चाची के कहने पर मनीष उसे घर छोड़ने गया। जहाँ लम्बी चाची ने उसके पसीने से भीगे जवान जिस्म को बाँहों में भरते हुए, 'थोड़ी देर रुक जाओ' का अनुरोध किया, मिन्नत की, उसे खींचा, चूमा...परन्तु उस समय के मन्नी ने अपने ऊपर सवार होते जवान मनीष को परे धकेलते हुए, चाची का अनुरोध ठुकरा कर, साहस का परिचय दिया। परन्तु अगले दिन जब दोस्त ज़फ़र ने उसे पुरुषोत्तम चाचा की कमज़ोरी और चाची की तन्हाई व अकेलेपन को देखते हुए, चाची का अनुरोध मान लेने के बारे में समझाया तब तक देर हो चुकी थी क्योंकि अगले ही दिन चाची की लाश नदी में तैरती हुई मिल गई।

किसी की अधूरी तमन्नाओं को पूरा कर, कुछ पल की खुशी और आनंद देने में कुछ भी अनैतिक नहीं था। जिस बात को वह ज़फ़र के समझाने पर भी समझ नहीं पाया था, वह बात ज़फ़र द्वारा भेजी गई नज़्म की इस वीडियो ने इतने अच्छे से समझा दी कि वह बरसों बाद उस घटना को याद कर फूट-फूट कर रो दिया। अब उसे समझ में आया, कुछ पलों का महत्त्व रिश्तों, नैतिकता और आदर्शवाद से कहीं बढ़ कर रहता है। आज इस नज़्म ने उस नासमझी की टीस को दुगुना कर दिया। कुछ बातों में देर करना, उम्रों का नासूर बन जाता है। कहानी में मन्नी और मनीष की जद्दोज़हद, चाची की पकड़ का बबलू की जकड़न में बदलना, उस अंतर्द्वंद्व का बाकमाल चित्रण लेखक ने किया है। कहानी इस बात का भी एहसास करवाती है कि हमारी शिक्षानीति में जहाँ भाषाओं और साहित्य को निरंतर कमतर किया जा रहा है जबकि उदासी व निराशा के समय कोई एक गज़ल, नज़्म व कविता, हमारे मनोवेगों का स्वर बन, हमें थपथपाने, सहलाने व शर्मिन्दगी के एहसास को धो डालने की काबिलीयत रखती है।

'वेताल का जीवन कितना एकाकी' नामक कहानी काया के रूपातंरण की कहानी है। जिसमें शाम के समय पार्क में बहुत कम आने वाले लोगों के लिए वहाँ बैठा एक बूढ़ा व्यक्ति एकदम स्थिर और अँधेरे का हिस्सा ही लगता है। बहुत धीरे से जब उसके भीतर को टटोला गया तो पता लगा कि वह एक जीवित इन्सान है, जिसे वक्त ने इस कदर अकेला और तन्हा कर दिया कि वह अपना वजूद खोने लगा और उसने किसी हद तक स्वयं को वेताल कामिक्स के एक पात्र क्रिस्टोफ़र किट वॉकर के चरित्र में ढ़ाल लिया। संदीप भी औरों की तरह यही समझता था कि वह बूढ़ा वहाँ होकर भी नहीं होता। जबकि एक दिन जब हिम्मत कर संदीप ने उससे बात की तो अस्फुट व अस्पष्ट स्वर में, उसकी घुमावदार बातों से उसे अंदाज़ा हुआ कि वह सरकारी नौकरी से वी. आर. एस लेने वाला धनजंय शर्मा है। दोनों बच्चे अपने परिवारों के साथ विदेशों में बस चुके हैं और पत्नी की मृत्यु के बाद से वह अपना अकेलापन ढो रहा है। संदीप को भी अपने घर में ऐसी चुप्पी का एहसास होने लगा था, जब से वह बैंगलूरु जाने और हो सके तो वहाँ से अमेरिका निकल जाने की प्लैनिंग कर रहा था। हमारे देश में धनजंय शर्मा जैसे अनेकानेक माँ-बाप ऐसे हैं, जो बुढ़ापे में अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं। उनकी संतान पढ़-लिख कर, अच्छे पैकेज

लेकर विदेशों में खुश और सैटल हो रही है। वहीं पीछे रह गए माता-पिता को देखने वाला कोई नहीं रहा। धनजंय शर्मा को देखकर ऐसे बहुत से लोगों की याद आती है, जिन्हें हम अकेले में बुदबुदाते, ख़ुद से बातें करते देख, हैरान होते हैं। बहुत मारक होता है, यह अकेलापन, आदमी किसी से बात करने से भी तरस जाता है। अपना अकेलापन दूर करने के लिए उसने कॉमिक्स की दुनिया को अपना लिया और उसी में ही जीने लगा। उससे बातें करते हुए, उसकी दयनीय हालत और उदासी देख, संदीप को उसमें अपने पिता की छवि दिखाई देने लगी। ऐसे माँ-बापों की गिनती अब बहुत बढ़ने लगी है।

संग्रह की एक कहानी 'खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावांतर' ग़रीबों के लिए बनाई गई सरकारी नीतियों व परियोजनाओं को उन तक पहुँचने से पहले ही गिद्धों की टोली तैयार रहती है, जिसमें सरकारी पटवारी, आढ़तिए, ठेकेदार, बैंक मैनेजर और बड़ी-बड़ी कंपनियों वाले सभी शामिल होते हैं। कहानी 'भावांतर' नामक सरकारी योजना की चीर-फाड़ करती है, जिसमें सरकार द्वारा किसान को फसल मंडी का न्यूनतम समर्थन देकर सरकारी तौर पर सहायता दिए जाने की नीति को लागू किया गया है। परन्तु किसान तक उसका बेहद नाममात्र हिस्सा पहुँच पाता है क्योंकि पटवारी अपने हिसाब से सरकारी कागज़ों की खानापूर्ति करता और आढ़तियों को उनका फायदा समझा कर, अपनी कमीशन पक्की करता है। अब भाड़ में जाएँ किसान और उनको लाभ पहुँचाने वाली योजनाएँ। बेहद शुष्क और गंभीर विषय को लेखक ने जिस बारीकी से पकड़ा और इस जालसाजी में लगे मलाई साफ करने वाले सेठों, कंपनी मालिकों और बैंक के सारे ताने-बाने को प्रस्तुत किया, वह अत्यन्त शानदार है। पटवारी, सेठ, बड़ी कंपनी के मैनेजर के हाव-भाव, बात करने का अंदाज़, कहाँ ढील देना, कहाँ लगाम कसना, कहाँ छोड़ना, कहाँ पटकना...आदि सब कुछ इस प्रकार से चित्रित किया गया है, मानों पाठक कोई दृश्य या फिल्म देख रहे हों। दूसरी ओर किसान, अनपढ, भोले कम, मूर्ख अधिक, या जिनकी वक्ती ज़रूरतें इतनी बड़ी है कि वह बहुत दूर तक अपना भला-बुरा देख-समझ नहीं सकते। इतनी समझ, सामर्थ्य और क्षमता नहीं है उनमें...कि वो अपना भला-बुरा देख-पहचान सकें। जिसका फायदा यह सारे ऊपर वाले सयाने, पढ़े-लिखे, धनी और कपटी पटवारी और सारा आला-अमला उठाते हैं। ग़रीबों का माल और लहू चूस कर, अमीर बनने सा बड़ा सुख इन सभी के लिए दूसरा कोई नहीं है....।

बाकी कहानियों में 'मूंडवेवालों का जलवा' में समाज में अपनी इमेज बनाने के लिए छज्जू जैसे बनिया परिवार ने जलवा पूजन में करोड़ों खर्च किए। इसमें कोई बड़ी बात नहीं, मुख्य बात है कि आज की चकाचौंध ने बुज़ुर्गों की स्थिति ही नहीं उनके महत्त्व व आदर को ताक पर रख दिया है। पिता की मृत्यु को इस परिवार ने इसलिए छुपा लिया ताकि इस शानदार समारोह के रंग में भंग न पड़ जाए। खोखलेपन और ऊपरी चमक-दमक के पीछे खून और माँस के रिश्ते भी बहुत पीछे छूटते जाते हैं। 'पत्थर की हौदें और अगन फूल' मिथक और विज्ञान के बीच किस्सागोई तक पहुँची कहानी दिलचस्प भी लगती है और कुछ-कुछ बनावटी भी। 'मर...नासपीटी' की दो औरतें जरीफ़ा और हलीमा...कभी पक्की सहेलियाँ हुआ करती थी, विवाह के बाद एक-दूसरे की कट्टर दुश्मन, पड़ोसी बनी। दुश्मनी की वजह भी सामने आती है परन्तु उसके बाद कहानी पटरी से उतर गई...। दुश्मनी, दोस्ती का ही बदला रूप है मगर कहानी का अंत अधिक असर नहीं छोड़ता। कहीं.. कुछ तो कमी रह गई लगती है....। 'वास्को-डी-गामा और नील नदी' इतिहास से सूत्र लेकर अनेक वर्ष पहले बिछुड गए दो प्रेमियों को मिलाने का प्रसंग। संवादों के द्वारा ही उनका अतीत, यादें और कसक सामने आती है। अंत में अकेली दूर उस चट्टान पर मिलते उनके शव शहर वालों के लिए कई प्रश्नचिह्न छोड़ जाते है, जिनमें से अलग-अलग धर्म व जाति का होना, उनके वियोग का गवाह बनता है। 'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी?' कहानी भोपाल का इतिहास बताती, दंगे-फसादों का सच उग़लती और धर्म की आड़ में अमीर पड़ोसी को लूट, उसकी जवान बच्चियों के साथ की गई ज़ोर-ज़बरदस्ती की घटनाओं द्वारा नानी अपनी ज़िद की कहानी सुनाती है जो वास्तव में समाज का नंगा सच सामने लाती है। उफ़! ऐसी क्रूरता और बेहयाई जो सदियों से हमारे देश और समाज का हिस्सा रही हैं, इससे कब निजात मिल पाएगी....?

'क़ैद पानी' कहानी भी दंबग व्यक्ति से डरने वाले देहाती लोगों की है, जो अपनी जोरू पर तो ख़ूब गुस्सा निकलाते और उन्हें हड़काते है परन्तु किसी संपन्न या दबंग आदमी के सामने भीगी बिल्ली बन खड़े हो, सच को सच कहने की हिम्मत नहीं रखते। उनकी कायरता और दब्बूपन के कारण ही ऐसे लोगों की दबंगगिरी और गुंडागर्दी फैलती-फूलती है। गाँव के कुएँ पर ऐसे ही एक दबंग ने कब्ज़ा कर, पानी को क़ैद कर लिया। इस पानी को क़ैद से एक औरत की हिम्मत ने ही मुक्त किया। अकेली औरत द्वारा अकेले आगे बढ़ने पर, उसे देख बाकी औरतें भी आगे बढ़ी और सभी ने मिलकर कुएँ को जंगले की क़ैद से मुक्त कर दिया। बहुत सुंदर कहानी...संदेश देती, प्रेरणा देती। अन्याय का सामना करने वाला पहले हमेशा अकेला ही होता है, उसे देख कर बाकी के लोग हिम्मत कर आगे बढ़ते हैं।

'चर्चा-ए-गुम' कहानी इतिहास की किसी नुक्कर से निकलती, उस चर्च को जीवित करने की अर्ज़ी, जहाँ अब बहुत बड़ा मिष्ठान भंडार खुल चुका है, जहाँ लाखों का कारोबार रोज़ाना होता है। उसे खाली करवाने की अर्ज़ी या सरकारी नोटिस क्या कर लेगा, जब सरकारी लोग ही इसका समाधान सुझाने वाले मिल जाते हैं। रमेश दुबे के मशवरे पर सरकारी नोटिस को धच्चा बताते हुए वहाँ के मालिक राजेश चौबे ने उस मिष्ठान के भूतल पर एक बहुत बड़ा मंदिर बनवा दिया। जहाँ मूर्तियों की स्थापना के लिए शहर के मंत्री और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को न्यौता दिया गया और भारी भरकम जलूस निकाला गया। हमारे देश में धर्म से बड़ा कोई मोहरा नहीं, शह भी यह मात

भी यह! अब उस भव्य मंदिर को हटाने की हिम्मत किसी अधिकारी तो क्या, किसी भी पार्टी की सरकार के वश की बात नहीं।

पंकज सुबीर की कहानियाँ समाज के उस सत्य से परिचित करवाती है, जो इतने बड़े देश में हर तरफ, किसी न किसी रूप में दिखाई देती है। उसकी प्रत्येक कहानी में सूक्ष्म व्यंग्य के साथ संवेदना और अनुभूति भी शामिल है। 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' का मनीष हो, वेताल का धनजंय शर्मा व संदीप, चर्चा-ए-गुम का रमेश दुबे, राजेश चौबे और मानव, कैद पानी की सुनीता व उसका पति रमेश...इलोई...की नानी, कोई भी पात्र ऐसा नहीं, जिसे हम किसी न किसी रूप में न जानते हो। ऐसे जाने-पहचाने चरित्रों को देखने के बावजूद समाज बहुत बार उन्हें समझने में भूल कर देता है। भला 'लम्बी चाची' के अकेलेपन को कभी समाज समझ पाया। यदि एक दिन जवान जहान लड़के मन्नी या मनीष को नग्न अवस्था में देख कर, उसके भीतर की औरत इतने वर्षों बाद मुखर हो उठी, मनमानी करने पर उतर आई तो समाज उसकी मनोस्थिति को समझ सकता है। उस घटना, उन पलों को समझ न पाने की नासमझी कारण मनीष का फूट-फूट कर रोना, किसी सामान्य व्यक्ति के पल्ले पड़ सकता है। कभी नहीं...इसे सिर्फ़ साहित्य ही समझ सकता है। क़ैद पानी की सुनीता जैसी हिम्मत और भावांतर जैसी सरकारी योजना किसी को इस ढंग से समझाई जा सकती है, जिस प्रकार पंकज सुबीर जैसे कहानीकार ने इसे कहानी के माध्यम से समझाने का प्रयास किया। क्या धनजंय शर्मा जैसे बूढ़े लोगों द्वारा अपने ही अस्तित्व को भुला कर, किसी काल्पनिक दुनिया में अपना वजूद खोजना और उस दुनिया को अपना लेने का दर्द कोई और इतनी आसानी से नहीं समझ सकता है।

उसकी कई कहानियों से मध्य प्रदेश, भोपाल की संस्कृति, पुरानी विरासत, शहरी चमक-दमक और देहाती जीवन में करवट लेते और बदलते जीवन की झलक भी दिखाई देती है।

000

पुस्तक समीक्षा

(दोहा संग्रह)
तितली है ख़ामोश

समीक्षक : डॉ. रामनिवास 'मानव'

लेखक : सत्यवान सौरभ

प्रकाशक : हरियाणा साहित्य अकादमी

दोहा संग्रह कुछ आप बीती और कुछ जगबीती से परिपूर्ण है। यह वर्तमान समय से संवाद करता हुआ काव्य कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। मुझे विश्वास है यह दोहा संग्रह पाठकों को प्रभावित करेगा। सत्यवान 'सौरभ' के दोहा संग्रह 'तितली है ख़ामोश' के दोहे आज के सामाजिक परिवेश आवश्यकताओं तथा लोक की भावनाओं का जीवंत चित्रण है। युवा दोहाकार ने अपने दोहों में जीवन के हर पहलू को छुआ है। सहज और सरल भाषा के साथ इस कृति के दोहों का धरातल बहुत विस्तृत है।

युवा कवि सत्यवान 'सौरभ' एक ऐसे ही संभावनाशील दोहाकार हैं, जो अपने सृजन के माध्यम से, दोहा छंद की सार्थकता सिद्ध कर रहे हैं। उनका नव-प्रकाशित दोहा-संग्रह 'तितली है खामोश' इस सत्य का साक्षी है। कविता, गीत, ग़ज़ल आदि अनेक साहित्यिक विधाओं के साथ विभिन्न विषयों पर फीचर लिखने वाले सत्यवान 'सौरभ' को दोहा-लेखन में विशेष सफलता मिली है। इनके दोहों का विषय-वैविध्य सहज ही द्रष्टव्य है। बचपन, माता-पिता, घर-परिवार, रिश्ते-नाते, पारिवारिक विघटन, बदलते परिवेश और पर्यावरण-प्रदूषण से लेकर सांस्कृतिक प्रदूषण तक सभी विषयों पर इन्होंने लेखनी चलाई है। पाश्चात्य संस्कृति तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण बदलती परिस्थितियों ने सर्वाधिक प्रभाव हमारे घर-परिवार और ग्राम्य जीवन पर डाला है। आज गाँव कस्बे, कस्बे शहर और नगर महानगर बनते जा रहे हैं। विकास की अंधी दौड़ ने बच्चों का बचपन, घर-परिवार की सुख-शांति और गाँव-देहात का भाईचारा छीन लिया है। लगता है, जैसे गाँव में गाँव नहीं रहा- लौटा बरसों बाद मैं, उस बचपन के गाँव। / नहीं बची थी अब जहाँ, बूढ़ी पीपल छाँव।।

गरीब, अनाथ और बेसहारा बच्चों की दशा-दुर्दशा तो और भी चिंतनीय और चिंताजनक है। स्वतंत्रता के 75 वर्ष बाद भी करोड़ों बच्चे शिक्षा से वंचित हैं; उन्हें छोटे-मोटे काम करके या कूड़ा-करकट बीनकर गुज़ारा करना पड़ता है। बच्चों के जिन हाथों में पुस्तक होनी चाहिए थी, वे कूड़ा-कचरा बीनने या फुटपाथों और चौक-चौराहों पर भीख माँगने को विवश हैं। कवि के शब्दों में- स्याही, कलम, दवात से, सजने थे जो हाथ। / कूड़ा-करकट बीनते, नाप रहे फुटपाथ।। सत्यवान 'सौरभ' के दोहों की दशा और दिशा दुरुस्त है। भाषा-शैली के परिष्कार से दोहों में और निखार आयेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

000

डॉ. रामनिवास 'मानव', प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (राजस्थान), मोबाइल- 80 5354 5632

पुस्तक समीक्षा

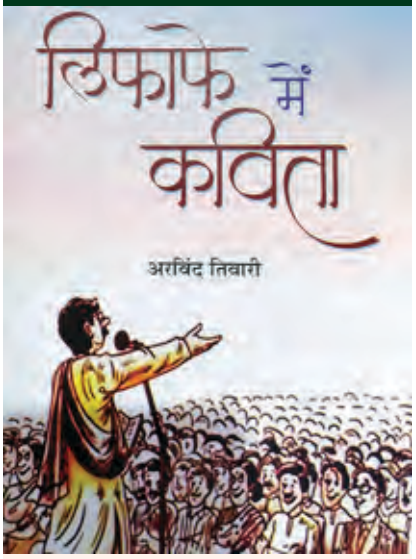

(व्यंग्य उपन्यास)

लिफाफे में कविता

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : अरविंद तिवारी

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

अरविंद तिवारी का व्यंग्य उपन्यास "लिफाफे में कविता" इन दिनों काफी चर्चा में है। अरविंद तिवारी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनके चार व्यंग्य उपन्यास, आठ व्यंग्य संग्रह, एक आदर्शवादी उपन्यास और दो बाल कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा इन्होंने शिक्षा विभाग राजस्थान की मासिक पत्रिका शिविरा एवं नया शिक्षक का तीन वर्षों तक सम्पादन भी किया था। अरविंद जी ने दैनिक नवज्योति में ढाई वर्षों तक प्रतिदिन "गई भैंस पानी में" व्यंग्य स्तंभ और राजस्थान पत्रिका की इतवारी पत्रिका में "ठंडी गर्म रेत" शीर्षक से एक वर्ष तक साप्ताहिक स्तंभ लेखन किया था। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। साहित्य की व्यंग्य विधा में अरविंद जी की सक्रियता और प्रभाव व्यापक हैं। अरविंद तिवारी की गिनती आज के चोटी के व्यंग्यकारों में है। इनका व्यंग्य रचना लिखने का अंदाज़ बेहतरीन है।

व्यंग्यकार ने कवियों और कवि सम्मेलनों को काफी करीब से देखा और इस व्यंग्य उपन्यास में अपने अनुभव को बेहद दिलचस्प अंदाज़ में अभिव्यक्त किया है। व्यंग्यकार के समक्ष यह चुनौती होती है कि वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की जीती-जागती तस्वीर पेश करे। इस दृष्टि से अरविंद तिवारी का यह व्यंग्य उपन्यास "लिफाफे में कविता" मंचीय कवियों और कवि सम्मेलनों की पड़ताल करता है। उपन्यास में मंचीय कवियों की गतिविधियों और उनकी ज़िंदगी पर रोशनी डाली गई है। लेखक के अनुसार आजकल कवि-सम्मलेन एक उद्योग का रूप धारण कर चुके हैं। व्यंग्यकार ने कवि-सम्मेलनों में दिखने वाली विसंगतियों पर रोचक तरीके से व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। उपन्यास के पात्र अपनी मक्कारी, पैंतरेबाज़ी, अड़ंगेबाज़ी में आकंठ डूबे हैं। इस व्यंग्य उपन्यास के माध्यम से लेखक ने भ्रष्टाचार, चाटुकारिता और अवसरवादिता का कच्चा-चिट्ठा खोला है। यह उपन्यास मंचीय कवियों की धूर्तता, बेईमानी, धोखाधड़ी इत्यादि की बहुत गहराई से पड़ताल करता है। देश के साहित्यिक-जगत में झूठ, फरेब, छल, दगाबाज़ी, दोमुँहापन, रिश्वत, दलाली, भ्रष्टाचार इत्यादि अनैतिक आचरणों को सार्वजनिक रूप से स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, व्यंग्यकार ने इस उपन्यास में इन अनैतिक मानदंडों और आचरणों पर तीखे प्रहार किए हैं। भाई-भतीजावाद, मिलीभगत, अनैतिक प्रथाएँ, निधियों की हड़पनीति, ये सब इस उपन्यास में हैं। उपन्यास कवि-सम्मेलनों में कविता के नाम पर चुटकुले, कवियों की गुटबाज़ी, चापलूसी और जुगाड़ से पुरस्कारों की प्राप्ति, कवि-सम्मेलनों में संचालकों की कारस्तानियों की तस्वीर पेश करता है।

इस व्यंग्य उपन्यास में व्यंजनात्मक तीखी अभिव्यक्ति और भरपूर कटाक्ष है। इस पुस्तक की रोचक बानगी प्रस्तुत है –

अंगदजी ने "ज्वलंत जगतपुरिया" को समझाया, मंचीय कवि के लिए सबसे बड़ा पैसा होता है। वह पैसे के अलावा किसी के आगे नहीं झुकता। पैसे के आगे वह अपना परिवार, मित्र, गाँव-

जवार, सिद्धांत आदि को छोड़ देता है। कविताई तो वह मंच पर चढ़ने से पहले ही छोड़ चुका होता है। उसकी घटिया तुकबंदी को अगर कोई कविता कहता है, तो कहता रहे, उसकी बला से। इतिहास गवाह है, जब किसी मंचीय कवि ने पैसे के अलावा किसी से दोस्ती की है तो वह बरबाद होकर ही रहा। (पृष्ठ 61)

अंगदजी ने उन्हें बताया जिस कवि की पिटाई हो जाती है, वह अखिल भारतीय कवि बन जाता है। यदि किसी अखिल भारतीय कवि की पिटाई हो जाए तो वह अमेरिका, ब्रिटेन में काव्य पाठ कर आता है। (पृष्ठ 62)

बुरी ख़बरें जल्दी फैलती हैं। यदि आपने कोई निंदनीय कार्य किया है तो ख़बर जंगल में आग की तरह फ़ैल जाएगी। इसके विपरीत, अगर आपको कोई पुरस्कार मिला है, तो अख़बार में ख़बर छपने के बावजूद मित्र आपकी उपलब्धि से अनजान रहेंगे। अच्छी ख़बर मित्रों को फ़ोन करके बतानी होती है, जबकि बुरी ख़बरों को मित्र अपने आप सूँघ लेते हैं। (पृष्ठ 69)

लोमड़ कवि जयपुर के होटल मानसिंह की साज-सज्जा देखकर अभिभूत थे। ऐसा लगा जैसे वे जीते-जी ही स्वर्ग में पहुँच गए ! सबसे पहले उन्होंने होटल का भ्रमण किया। होटल में बने लग्ज़री और एंटीक वस्तुओं के शोरूम, स्विमिंग पूल, राजस्थानी परंपरा की पेंटिंग देखकर लोमड़ कवि ने हिन्दी भाषा को धन्यवाद दिया। उन्हें लगा कि आज़ादी के बाद इस देश में हिन्दी और भिंडी ने काफी तरक्की की है। दोनों की बोंसाई किस्में तैयार हो गई हैं। बोंसाई भिंडी की किस्म से पूरे साइज की भिंडी मिल रही हैं। यही हाल हिन्दी का है। फाइव स्टार होटलों में हिन्दी के शिविर आयोजित होने के कारण हिन्दी का स्तर काफी ऊँचा हो गया है। अब वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी सेवियों को नोबेल पुरस्कार मिलने लगेगा। लोमड़ कवि को लगा, हिन्दी डनलप के गद्दों पर हिलोरें मार रही है ! कभी चली होगी हिन्दी पगडंडियों पर, अब तो वह "एक्सप्रेस वे" पर फर्राटे भर रही है। कभी अंग्रेज़ी की नौकरानी रही हिन्दी, फाइव स्टार होटल में पहुँचकर महारानी लग रही थी। (पृष्ठ 75)

विश्वविद्यालय में होनहार छात्र जब अपने गाइड की सेवा करते हुए सेवा कार्य में शिखर तक पहुँच जाता है, तो गाइड उस छात्र को अपनी पुत्री के लिए पसंद कर लेता है। ऐसा होने पर दोनों पक्ष फायदे में रहते हैं। गाइड महोदय का दहेज़ बच जाता है, जबकि छात्र का कॅरियर बन जाता है। गाइड के संपर्क से उसे शानदार नौकरी मिल जाती है, जो किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय की होती है। इस व्यापार में गाइड की पुत्री की पसंद भी नहीं देखी जाती। (पृष्ठ 85)

अरविंद तिवारी ने व्यंग्य विधा को नया तेवर और ताज़गी प्रदान की है। उपन्यास की भाषा चुटीली है। उपन्यास के हर वाक्य में गहरे पंच हैं, व्यंग्य की बारीक चुभन है। इस व्यंग्य उपन्यास में लेखक ने मुहावरों, कहावतों और कविताओं का सुंदर संयोजन किया है। व्यंग्यकार ने इस पुस्तक में कवि-सम्मेलनों और मंचीय कवियों का जो चित्र खींचा है वह उनकी अद्‌भुत व्यंग्य शक्ति का परिचय देता है। कथोपकथन इस व्यंग्य उपन्यास की ताकत है। यह भी लेखक का पैना उपन्यास है।

"लिफाफे में कविता" बहुपात्रीय व्यंग्य उपन्यास है। प्रत्येक पात्र अपने-अपने चरित्र का निर्माण स्वयं करता है। अरविंद तिवारी इस व्यंग्य उपन्यास में पाठकों से रू-ब-रू होते हुए उन्हें अपने साथ लेकर चलते हैं। उपन्यास में कवि-सम्मेलनों और मंचीय कवियों के रोचक किस्से हैं। पाठक के मन में निरंतर आगे आ रहे घटनाक्रम को जानने की उत्कंठा बनी रहती है। 192 पृष्ठ की यह पुस्तक अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। अरविंद तिवारी की लेखन शैली लाजवाब है। यही उनकी सफलता है जो इस व्यंग्य उपन्यास को पठनीय और संग्रहणीय बनाती है। व्यंग्यकार का यह व्यंग्य उपन्यास भारतीय व्यंग्य विधा के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है।

000

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

रॉकिंग चेयर

लेखक : अरुणा सब्बरवाल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

इंग्लिश रोज़, लाल जोड़ा, कील, उसका घर, छोटा सा शीश महल, शब्द कभी मरते नहीं, परदेश में पतझड़, अनकहा कुछ, आख़री धागा, महकती बयार, नक़ाब, रॉकिंग चेयर, अंधेरों के बीच, प्रतिरोध, उडारी, अरुणा सब्बरवाल की इन पन्द्रह कहानियों को इस कहानी संग्रह -रॉकिंग चेयर, में संकलित किया गया है। वरिष्ठ कथाकार ममता कालिया ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है- कितनी अजीब सी बात है कि हमारे देश समाज के कुछ प्रतिभाशाली महत्त्वाकांक्षी लोग अपनी जानी-पहचानी ज़मीन छोड़कर दूरस्थ देशों में चले जाएँ, जीविका की ख़ातिर परदेस में बसे। वहाँ का खानपान जीवन शैली अपना लें, किंतु उनकी जड़ें अपने देश भारत से जुड़ी रहें। उनमें अरुणा सब्बरवाल का नाम भी आता है। अरुणा सब्बरवाल लम्बे समय से युनाइटेड किंडम में रह रही हैं किंतु उनकी कहानियों में प्रवासी लेखक का बनावटीपन क़तई नहीं है क्यूँकि अरुणा ने भारत देश की मिट्टी और हवा-पानी से अपना रिश्ता क़ायम रखा है।

000

पुस्तक समीक्षा

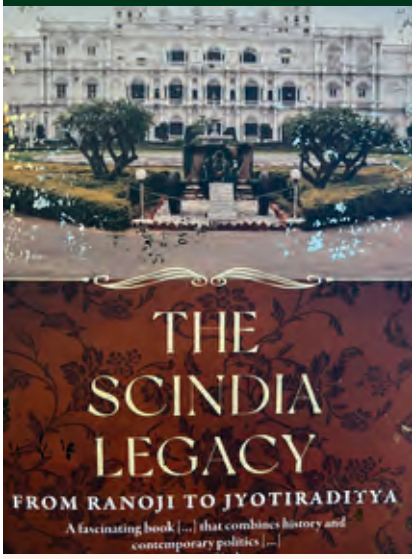

(इतिहास)

द सिंधिया लीगेसी

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : अभिलाष खांडेकर

प्रकाशक : रूपा प्रकाशन

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

हाल के दिनों में सिंधिया राजघराने पर दो किताबें आईं हैं रशीद किदवई की द हाउस ऑफ सिंधिया रोली बुक्स से और अभिलाष खांडेकर की द सिंधिया लीगेसी रूपा से। आमतौर पर कुछ सालों पहले तक इस घराने पर लिखने से बचा जाता था। वजह इस घराने का 1857 की क्रांति के दौरान रानी लक्ष्मी बाई का साथ ना देने का आरोप लगना और आज़ादी के बाद राजनीति में सक्रिय विजयाराजे सिंधिया का लगातार इंदिरा गांधी और कांग्रेस सरकारों का विरोध करना। मगर अब वक्त बदला है और मध्यप्रदेश में सक्रिय वरिष्ठ पत्रकारों की इन दो किताबों ने तीन सौ साल से लगातार सत्ता और सरकार में सक्रिय इस घराने की अंतर्कथाओं को बहुत करीब से देखने और समझने का मौका दिया है।

लेखक पत्रकार अभिलाष खांडेकर की किताब द सिंधिया लीगेसी फ्रॉम रानोजी टू ज्योतिरादित्य में इस राजघराने के तीन बडे किरदारों के आसपास इस किताब को बेहद ख़ूबसूरती से बुना गया है। राजनीति में बेमन से आने वाली राजमाता विजयाराजे सिंधिया जो पहले कांग्रेस फिर जनसंघ और बाद में भाजपा में गईं, फिर उनके बेटे माधवराव सिंधिया जो पहले जनसंघ और बाद में कांग्रेस के नेता बने और उनके पोते ज्योतिरादित्य सिंधिया जो पहले कांग्रेस और अब भाजपा के नेता हैं। इन तीनों नेताओं के काम करने के तरीके उनके इर्दगिर्द बुनी गईं परिस्थितियाँ और उन हालात में लिये गए फ़ैसलों को लेखक ने ऐसे लिखा है जैसे वह उस मौके पर मौजूद थे। यही इस किताब की ख़ूबी है।

सिंधिया घराने का सफर करीब तीन सौ साल पहले रानोजी शिंदे से शुरू होता है जो, सिलेदार परिवार में जन्मे और वफादारी के दम पर पेशवा के अंगरक्षक और बाद में मालवा के सरदार बने। मध्यप्रदेश के मालवा इलाके का उज्जैन- सिंधिया, इंदौर- होलकर, धार और देवास- पवार, नागपुर- भोंसले तो बड़ौदा- गायकवाड और झांसी- नेवलकर के कब्ज़े में पेशवा ने दे रखा था। सिंधिया घराने के तीसरी पीढ़ी के सामंत दौलत राव 1810 में उज्जैन से ग्वालियर आये और लश्कर को राजधानी बनाया। मगर इस घराने की बुरी यादें जुड़ी हैं जयाजीराव सिंधिया के कारण, जिन्होंने अंग्रेज़ों के दबाव में आकर तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई और नानासाहेब सरीखे मराठा सरदारों की मदद ही नहीं की बल्कि अंग्रेज़ों के धमकाने पर मराठा सरदार तात्या टोपे के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया, जिसमें रानी लक्ष्मीबाई नेवलकर ने शहादत पायी और इतिहास के पन्नों पर अमर हो गईं। मगर यही जयाजीराव सिंधिया राजघराने को बेहद अमीर

और संपन्न बनाकर गए। ग्वालियर के आज बड़े विशाल जयविलास पैलेस, मोती महल और उषा किरण पैलेस इन्हीं की देन है।

देश को आज़ादी पाने वाले दिनों में जॉर्ज जीवाजीराव सिंधिया ग्वालियर के महाराजा थे जिनकी पत्नी विजयाराजे सिंधिया ने बड़े बेमन से राजनीति को सीखा, समझा और निबाहा। आज़ादी पाने के बाद 550 से ज़्यादा राजघरानों पर संकट था कि वह आने वाले दिनों में क्या करें, लोकतंत्र के सामने अपने राजतंत्र को कैसे बचाएँ। जयपुर की रानी गायत्री देवी और ग्वालियर की विजयाराजे सिंधिया ने राजनीति की राह पकड़ी। गायत्री देवी स्वतंत्र पार्टी, तो विजयाराजे कांग्रेस में आईं।

ग्वालियर की महारानी ने लोकसभा चुनाव 1957 में गुना से लड़ा, जहाँ उन्होंने हिंदू महासभा को पराजित किया, तो 1962 में ग्वालियर से लड़कर जनसंघ के प्रत्याशी को हराया, मगर इंदिरा गांधी के रवैये के कारण वह ज़्यादा दिन कांग्रेस में रह नहीं सकीं। पहले इंदिरा गांधी और फिर उनके राजनीतिक गुरु द्वारिका प्रसाद मिश्रा से पटरी नहीं बैठ पाने के कारण विजयाराजे सिंधिया ने कांग्रेस को अलविदा कह कर जनसंघ की शरण ली और बाद में आपातकाल भी भोगा। लेखक ने विजयाराजे की पार्टी बदलने की उलझन और कांग्रेस छोड़ नए बने जनसंघ में लाने की कवायद को रोचक तरीके से लिखा है।

किताब को पढ़कर जाना कि विजयाराजे शायद पहली नेता होगीं जिन्होंने एक साथ दो चुनाव, दो अलग पार्टी और दो अलग चुनाव चिह्न पर लड़े और जीते। 1967 में करेरा से विधानसभा चुनाव जनसंघ की टिकट पर तो उसी दौरान स्वतंत्र पार्टी की उम्मीदवार बनकर गुना लोकसभा सीट पर चुनाव लड़ा और जीता। मध्यप्रदेश के राजनीतिक इतिहास में 1967 को इसलिये भी याद रखा जाता है कि इस साल कांग्रेस के मज़बूत मुख्यमंत्री द्वारका प्रसाद मिश्रा की सरकार विजयाराजे ने कांग्रेस विधायक दल में टूट कराकर वैसे ही गिरा दी जैसे 2020 में कांग्रेस आलाकमान के करीबी कमलनाथ की सरकार ज्योतिरादित्य सिंधिया ने गिरा दी। दोनों वक्त सिंधिया राजघराने के सम्मान और अहम की लड़ाई थी जिसमें हार कांग्रेस पार्टी की हुई।

विजयाराजे की ज़िंदगी का सबसे बडा दुख इकलौते बेटे माधवराव सिंधिया से रही दूरी का रहा। दोनों पहले एक फिर अलग अलग पार्टी में रहे। लेखक अभिलाष खांडेकर के माधवराव से करीबी संबंध रहे हैं, इसलिये इस किताब में कई अच्छे प्रसंग ऐसे हैं जिनमें नए माधवराव की छवि दिखती है।

माधवराव का हवाला कांड में नाम आना। उसके बाद 1996 में नई पार्टी बनाकर दो प्रत्याशियों को जिताना। यूनाइटेड फ्रंट का हिस्सा बनना फिर कांग्रेस में वापस आना और लगातार नौ चुनाव जीतने का रिकॉर्ड बनाए रखना आसान काम ना था। माधवराव सिंधिया के अपने समकालीन नेताओं के साथ संबंधों को भी किताब में लेखक ने रोचक तरीके से लिखा है। ग्वालियर के इस चार्मिंग महाराजा की विमान दुर्घटना में असामयिक मौत और उनकी अंतिम यात्रा का विवरण भी किताब का रोचक हिस्सा है।

सिंधिया परिवार के चमकदार नेता ज्योतिरादित्य सिंधिया का अचानक राजनीति में आना, गांधी परिवार की करीबी पाना, पंद्रह साल बाद कांग्रेस की मध्यप्रदेश में वापसी कराना और अचानक ही पार्टी तोड़कर विपक्षी बीजेपी में चले जाना ऐसी कहानी है, जिस पर आसानी से भरोसा नहीं होता मगर राजनीति में सब कुछ मुमकिन है। एमपी में कमलनाथ सरकार गिराने की कहानी को भी अभिलाष खांडेकर ने अपने सूत्रों के दम पर विश्वसनीय तरीके से लिखा है। यह किताब पढ़ते वक्त आप एक साथ देश और मध्यप्रदेश की राजनीति के घटनाक्रमों के साक्षी बनते हैं।

राजनीति में रुचि रखने वालों के लिये यह किताब राजनीति की समझ बढ़ाने के लिए बेहद ज़रूरी है। यह शोधपरक और रुचिकर किताब है, जो पहले से आख़िरी पन्ने तक बाँधे रहती है। साथ ही सिंधिया राजघराने के देश की राजनीति में योगदान का तथ्यपरक मूल्यांकन भी करती है।

000

नई पुस्तक

(आलोचना)

विमर्श- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पंकज सुबीर के उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" पर केन्द्रित आलोचना पुस्तक "विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" प्रकाशित होकर आ गई है। इस पुस्तक का संपादन वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार सुधा ओम ढींगरा ने किया है। बीज आलेख वरिष्ठ साहित्यकार श्री नंद भारद्वाज ने लिखा है। 368 पृष्ठों की इस पुस्तक में उपन्यास पर की गईं सौ से भी अधिक आलोचनाएँ, समीक्षाएँ तथा टिप्पणियाँ शामिल हैं। साथ ही कवयित्री रेखा भाटिया द्वारा उपन्यास पर केन्द्रित पंकज सुबीर का लम्बा साक्षात्कार भी पुस्तक में है। सुधा ओम ढींगरा ने संपादकीय में लिखा है- । किताब की सामग्री बताती है, पाठकों के साथ-साथ आलोचकों और समीक्षकों ने भी उपन्यास बेहद पसंद किया। यह पुस्तक पंकज सुबीर के उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(यात्रा संस्मरण)

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी

समीक्षक : कुमार सुशान्त

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

कुमार सुशान्त
17/2 रजनी कुमार सेन लेन
फ्लोर -द्वितीय, फ्लैट नंबर -203
पोस्ट ऑफिस - हावड़ा, जिला - हावड़ा,
राज्य -पश्चिम बंगाल
पिन कोड - 711101
मोबाइल- 8961111747
ईमेल- kumarsushant515@gmail.com

कुछ महीने पहले गीताश्री की एक पुस्तक आई है जिसका नाम है, "कुछ इधर ज़िंदगी कुछ उधर ज़िंदगी।" यह पुस्तक उतनी चर्चित नहीं हुई, जितनी अमूमन गीताश्री की पुस्तकें होती हैं। दरअसल यह पुस्तक यात्रा संस्मरण है। जैसा की सभी को ज्ञात है कि यात्रा संस्मरण की पुस्तक के पाठक कम और अलग किस्म के होते हैं। इस पुस्तक के शीर्षक को पढ़ते ही प्रश्न उठता है कि इधर-उधर आख़िर किधर ज़िंदगी ? उत्तर है - कुछ इधर ज़िंदगी कुछ उधर ज़िंदगी ! मनुष्य की ज़िंदगी कुछ इधर-उधर में ही कट जाती है। एक तरफ जीवन की आपाधापी होती है तो दूसरी तरफ पूरी दुनिया घूमने की इच्छा। अधिकांश मनुष्य अपनी इच्छाओं को मार देता है और दुनियादारी में लगा रहता है। लेकिन गीताश्री की गिनती उन असाधारण मनुष्यों में है जो जीवन की आपाधापी में भी यात्राएँ ढूँढ़ लेती हैं। उन्हीं के शब्दों में कहूँ तो -" मैंने यात्रा का कोई अवसर कभी नहीं गँवाया। आगे बढ़ कर मौके हासिल किए और तमाम अवरोधों को पार कर यात्राएँ की। कई तरह के जोखिम उठाए। घर-दफ्तर की नाराज़गियाँ झेलीं। छोटे बच्चे को छोड़कर जाने का गिल्ट सहा।" अब इसी से अंदाज़ा लगा लीजिये कि, जो स्त्री अपनी छोटी बच्ची को छोड़कर यात्राएँ कर सकती है, उसके लिए यात्रा का महत्त्व क्या रहा होगा !

इस किताब में गीताश्री के द्वारा की गई देश-विदेश की यात्राओं का वर्णन है। उन्होंने पूरे किताब को दो खण्डों में रखा है। पहले खण्ड का नाम देस खंड है तो दूसरे खण्ड का नाम परदेस खण्ड है। देस खण्ड के अंतर्गत दक्षिण भारत, खज्जियार, राजस्थान, केरल, झाड़खंड, कुशीनगर, मणिपुर, पटनी टॉप (जम्मू क्षेत्र) और गोवा की यात्रा का वर्णन है। परदेस खण्ड के अंतर्गत फुकेत, बाली द्वीप, श्रीलंका, सीरिया, दक्षिण कोरिया, प्राग, भूटान, स्पेन, ईरान, ब्रसेल्स (बेल्जियम) और तिब्बत की यात्रा का वर्णन है।

यात्रा संस्मरण पढ़ने का फायदा यह होता है कि घर बैठे बिना किसी खर्च के आप उस जगह पर पहुँच जाते हैं, जहाँ का वर्णन आप पढ़ रहे होते हैं। यात्रा संस्मरण पाठक को कल्पना लोक में ले जाता है। पाठक घर बैठे देश-विदेश, जंगल-झाड़, रेगिस्तान, पहाड़, समुद्र की यात्रा कर लेता है। यात्रा संस्मरण की भाषा सशक्त होनी चाहिए अन्यथा पाठक को रोमांचित नहीं होते हैं। गीताश्री इस मामले में धनी हैं। उन्हें मालूम है कि पाठक को कैसे हवाई घोड़े पर सवार कर यात्रा करवानी है और यात्रा संस्मरण पढ़वाना है। उन्हीं के शब्दों में कहूँ तो वे "बौखलाया हुआ गद्य" की मालकिन हैं। उनकी भाषा में ऐसा जादू है कि पाठक उनकी यात्राओं का वर्णन जब पढ़ना शुरू करता है तो उसकी गिरफ्त में फँसता चला जाता है और बिना समाप्त किये उसे छोड़ नहीं पाता है।

यात्रा संस्मरण को पाठक लेखक की दृष्टि से पढ़ता है अर्थात् पाठक की आँख लेखक होता है। हर लेखक का अपना दृष्टिकोण होता है। गीताश्री का भी अपना दृष्टिकोण है। हर लेखक का अलग दृष्टिकोण होने के कारण एक ही स्थान का वर्णन हर लेखक अलग-अलग ढंग से करता

है। गीताश्री यात्रा संस्मरण लिखते-लिखते रिपोतार्ज लिखने लगती हैं। रह-रह कर उनका अट्ठारह साल रिपोर्टिंग करने का अनुभव बाहर आ जाता है। उदाहरण स्वरूप सीरिया-2 यात्रा के वर्णन को देखा जा सकता है। एक जगह वे लिखती हैं -"इजराइल अधिकृत गोलन में यूँ तो 244 गाँव आते हैं, लेकिन 5 गाँव ऐसे हैं, जिसमें सीरियाई नागरिक रहते हैं। इन पाँच गाँवों में रहने वाले 30 हज़ार ड्रूज मुस्लिमों के लिए ज़िंदगी मुश्किलों का पहाड़ बन चुकी है। तार के बाड़ों से घिरे ये गाँव वाले लगातार मौत, यातनाओं और शोषण का शिकार हो रहे हैं। इन गाँव में रहने वाले बच्चों और युवाओं के लिए न तो शिक्षा और न ही स्वास्थ्य की बेहतर सुविधाएँ हैं।" गीताश्री का यह रिपोर्टर रूप संस्मरण की भाषा में प्रवाहमयता को बढ़ाता है। यात्रा संस्मरण की भाषा और रिपोर्टर की भाषा का योग उनकी भाषा को नए स्तर एवं नए आयाम पर लेकर जाती है। पाठक को यह भाषा बाँध लेती है और पूरी पुस्तक पढ़ने को बाध्य कर देती है।

'विनोद कुमार शुक्ल' के उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' के रघुवर प्रसाद जब अपनी पत्नी 'सोनसी' को देखते हैं तो हर बार देखने में कुछ ना कुछ छूट जाता है क्योंकि सोनसी के रूप में बासीपन नहीं है। स्वयं विनोद कुमार शुक्ल के शब्दों में कहें तो 'सोनसी नित नई सुबह थी।' गीताश्री द्वारा लिखी गई यात्रा संस्मरण में भी बासीपन नहीं बल्कि टटकापन है। उसे जितनी बार पढ़ो उतनी बार लगता है कि उसमें नित नई सुबह की ताजगी है।

गीताश्री यह किताब पाठकों को सौंपने से पहले यह ऐलान करती हैं कि -"अगली किताब में ग्रामीण टूरिज्म का विशेष खंड होगा और यूरोप चीन और अमेरिका की यात्राएँ होंगी।" गीताश्री की उपर्युक्त पंक्तियों से यह पता चलता है कि 'कुछ इधर ज़िंदगी कुछ उधर ज़िंदगी' नामक इस किताब को लिखने में गीताश्री को बहुत आनंद आया है। इसी कारण वे इसी किताब की भूमिका में अगले किताब की घोषणा कर देती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

उस तरह की औरतें

समीक्षक : संजीव त्रिपाठी

लेखक : डॉ. रंजना जायसवाल

प्रकाशक : श्रीहिन्द पब्लिकेशन

डॉ रंजना जायसवाल का पहला एकल कहानी संग्रह है। "उस तरह की औरतें" ....जब यह किताब श्री हिंद पब्लिकेशन उज्जैन से मिली, तो इसके नाम ने मन में कौतूहल पैदा किया कि किस तरह की ..आखिर किस तरह की औरतों की बात डा. रंजना जायसवाल करना चाह रही हैं। पढ़ना शुरू किया तो पाया कि यह तो संवेदनाओं और भावनाओं से भरी सत्रह कहानियों का संग्रह है। 'सजी धजी मेहरिया और लिपी पुती देहरियाँ ही अच्छी लगती हैं', 'उस तरह की औरतें' कहानी की यह लाइन ही उस पूरी कहानी का सार स्पष्ट कर देती है। मॉडर्न ज़माने की अनुषा जो अपनी स्वतंत्रता और पहचान को बनाए रखना चाहती है, पर समाज अनुषा जैसी युवतियों को उस तरह की औरतें मानता है, जबकि अपने दायरे में रह कर ये खुल कर जीना चाहती हैं, अपना सेल्फ रेस्पेक्ट कायम रखना चाहती हैं। बस इतनी सी ख्वाहिश भी यदि लोगों को खटके, तो क्या कहा जाए। अनुषा के माध्यम से लेखिका ने समाज को झकझोरने की सफल कोशिश की है। 'धूप का एक टुकड़ा...' विधुर गुप्ता साहब और विधवा लता की कहानी है। प्रौढ़ उम्र के दोनों एक-दूसरे के कैसे अपना अकेलापन बाँटते हैं पर समाज, यहाँ तक कि उनकी सन्तान भी उनके रिश्तों पर उँगली उठाते हैं जबकि उनके बीच यदि कोई रिश्ता है, तो वह सहानुभूति का है, दर्द का है।

मानवीय संवेदनाओं से भरी ऐसी एक कहानी है 'अंतिम इच्छा' जिसमें बड़ी बहन की मौत के बाद छोटी बहन को भावनात्मक रूप से मजबूर किया जाता है कि बड़ी बहन की अंतिम इच्छा को पूरा करने वह अपने जीजाजी से शादी कर ले, ताकि बच्चों को माँ का प्यार मिल सके। इस कहानी की बात करना इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि अक्सर हम इस तरह घटनाओं को अपने आस-पास देखते हैं और इसे उचित भी मानते हैं कि बड़ी बहन कि यदि दुर्भाग्यवश मृत्यु हो जाए, तो छोटी बहन का उसकी जगह आना सबसे अच्छा विकल्प है, जिससे बिन माँ के बच्चों को माँ मिल सके। किन्तु लेखिका ने इस कहानी को छोटी बहन के दृष्टिकोण से लिखा है। नेहा का अंतर्द्वंद्व, इमोशनल ब्लैकमेल से बचने की उसकी जद्दोजहद और सारी उम्र दूसरी औरत के टैग से छुटकारा पाने की उसकी लालसा और अंत में अपनी अंतरात्मा पर सही निर्णय पर पहुँचने की उसकी यात्रा सचमुच दिलचस्प है। ऐसी अनेक सारगर्भित कहानियों से लेखिका डॉ. रंजना जायसवाल ने समाज को रोज़मर्रा की ज़िंदगी में आने वाले मुद्दों का बेबाकी से सामना करने की राह दिखाई है और इस प्रयास में वे सफल होती दिख रही हैं। डॉ. रंजना जायसवाल का यह कहानी संग्रह विविधिताओं से परिपूर्ण है।

000

पुस्तक समीक्षा

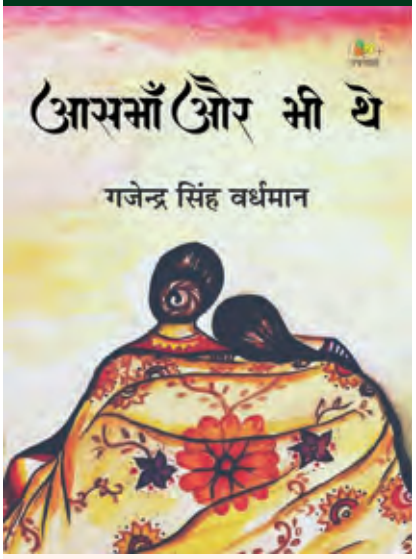

(उपन्यास)

आसमाँ और भी थे

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : गजेन्द्र सिंह वर्धमान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"आसमाँ और भी थे" गजेन्द्र सिंह वर्धमान का तीसरा उपन्यास है। इसके पूर्व गजेन्द्र सिंह के "कहिये मंज़िल से इंतज़ार करे" और "अनामिका" उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। "आसमाँ और भी थे" ग्रामीण लोगों के जीवन के ताने-बाने को बुनता हुआ एक सामाजिक उपन्यास है। अक्सर कथाकार ग्रामीण जीवन को काल्पनिक तरीक़े से ख़ूबसूरत व लुभावने दृश्य के तौर पर प्रस्तुत करते हैं, लेकिन गजेन्द्र सिंह वर्धमान ने इनका वास्तविक चित्रण किया है, यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी ख़ूबी है। इस लघु उपन्यास में स्त्री पात्रों के सांसारिक संघर्ष की कहानी रची गई है। "आसमाँ और भी थे" की कहानी में विविधता है। जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना, समस्या, आंकाक्षा इस उपन्यास में चित्रित है। इस कृति में ज़मीनी सच्चाइयों का अंकन है। इस उपन्यास की कहानी हमें ऐसे अँधेरे कोनों से रू-ब-रू करवाती है कि हम हैरान रह जाते हैं। यह घोर यथार्थवादी उपन्यास है। इस उपन्यास में पुरुष प्रधान समाज में जी रही बेबस, बंधनों में जकड़ी स्त्रियों की व्यथा कथा है। इस उपन्यास की अधिकांश घटनाएँ पुरुष द्वारा प्रताड़ित शोषित स्त्रियों की असहनीय दास्ताँ को बयान करती है। उपन्यास का कथानक अनेक घटनाओं और नाटकीयता से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। उपन्यास के केंद्र में तीन नारी-पात्रों की जीवन-गाथा है, जो नंदराम और यशोदा की बेटियाँ हैं। इन बेटियों की पढ़ाई-लिखाई, शादी-ब्याह और जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों में समाज ने इन बेटियों के पैरों में बंदिशों की बेड़ियाँ बाँध रखी है। ग्रामीण समाज में बेटियाँ अपनी मर्ज़ी से अपना जीवन साथी नहीं चुन सकती हैं। पति की मृत्यु के बाद विधवा स्त्री की दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। गाँवों में विधवा स्त्री किसी से प्रेम नहीं कर सकती है और किसी पुरुष से शादी करके अपनी ज़िंदगी की शुरुआत फिर से नहीं कर सकती है। ग्रामीण क्षेत्र में एक पुरुष अपने जीवन में कितनी भी बार शादी कर सकता है लेकिन एक महिला को दूसरी बार विवाह करने की इजाज़त नहीं है। कथाकार ने इस उपन्यास में समाज की कुरीतियों को इंगित किया हैं जैसे लड़की के जन्म पर दुखी और लड़के के जन्म पर खुशी। अभी भी गाँवों में लड़का नहीं पैदा करने के लिए औरत को ही ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। ग्रामीण समाज में संपत्ति का बँटवारा बेटों के बीच किया जाता है, बेटियों को संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा जाता है।

गजेन्द्र सिंह वर्धमान इस उपन्यास के माध्यम से महिलाओं की आत्मीय पीड़ा, मानसिक अंतर्द्वंद्व, अपने पति द्वारा किया गया विश्वासघात, उत्पीड़न, अत्याचार जैसे तत्वों को पाठकों के समक्ष लाते हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र नंदराम, यशोदा, राजनंदिनी, गौतमी, धनवंतरी, देवांगन अपनी अपनी जगह जीवन का संघर्ष करते हैं। इनके अलावा इस उपन्यास में जगदीश, राघव, भीकमचन्द, सुखदेव, जानकी के अलावा भी कुछ चरित्र हैं, एक लेखक के लिए बहुत मुश्किल होता है इतने सारे पात्रों को सँभालना और उनके साथ न्याय करना। कथाकार ने हर पात्र को इस तरह से जीवंत बना दिया है कि उपन्यास पढ़ने के बाद हर पात्र याद रह जाता है। इस पुस्तक में लेखक ने राजनंदिनी और धनवंतरी नाम के क़िरदारों के ज़रिए महिला जीवन की तकलीफ़देह स्थितियों को गहराई के साथ पेश किया है। इस उपन्यास में संघर्षशील और

आशावादी राजनंदिनी, गौतमी जैसी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं, जो परिस्थितियों के सामने झुकती नहीं हैं। लेखिका ने इस कृति में सामाजिक यथार्थ और परिस्थितियों का सटीक शब्दांकन किया है। नारी उत्पीड़न का घोर पाशविक रूप और पुरुष की मानसिकता का विकृत रूप देखना हो तो आपको इस उपन्यास को पढ़ना होगा। उपन्यास में लेखक ने जिन-जिन बिंदुओं को माध्यम बनाया है वे आज के ग्रामीण समाज की कटु सच्चाई है।

इस कृति में एक ग़रीब कृषक के पारिवारिक, दाम्पत्य जीवन, आर्थिक अभाव, मानसिक संघर्ष, पारम्परिक-रुढ़िवादी विचारधारा, नारी के अंतर्मन का ओजस्वी वर्णन किया गया है। लेखक ने इस कृति में अंधविश्वास को भी दिखाया है। इसके साथ ही यह कृति दिनोंदिन की जद्दोजहद से रू-ब-रू कराती है। कथाकार ने ग्रामीण जीवन के कठोर यथार्थों पर रौशनी डालने का अच्छा प्रयास किया है। लेखक सहजता से समाज का यथार्थ सामने रख देते हैं। अनुभूतियों की सहजता इस उपन्यास में देखी जा सकती है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन-स्थितियों के सहारे हमारे समय-समाज के ज्वलंत सच को रेखांकित किया गया है। कथाकार ने अपनी लेखनी से ग्रामीण लोगों की जीवन शैली को जीवंत रूप दिया है। उपन्यासकार ने कथावस्तु को गति देने के लिए कथोपकथन शैली का सहारा लिया है। कुछ संवादों द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है। पात्रों का चरित्र चित्रण, व्यवहार स्वाभाविक है। इस उपन्यास का शीर्षक कथानक के अनुसार है और शीर्षक कलात्मक भी है। कथानक में सहजता है। उपन्यास पाठकों और समाज को आईना दिखाता है। "आसमाँ और भी थे" एक सशक्त उपन्यास है जिसमें ग्रामीण जीवन और स्त्री जीवन की त्रासदियों को कथाकार ने जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। गजेन्द्र सिंह वर्धमान सशक्त उपन्यास लिखने के लिए बधाई के पात्र हैं। आशा है साहित्य जगत् में इस कृति का स्वागत होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(मुक्तक संग्रह)

ज़रा-सी बात पर

समीक्षक : डॉ. रोहिताश्व अस्थाना

लेखक : अशोक अंजुम

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

अशोक 'अंजुम' के अब तक हास्य-व्यंग्य कविता, ग़ज़ल, गीत, दोहा, नाटक, खंडकाव्य, मुक्तक आदि विधाओं पर लगभग 25 कृतियाँ प्रकाशित एवं चर्चित हो चुकी हैं। इसी प्रकार उनके संपादन में लगभग 40 कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। अभिनव प्रयास (त्रैमासिक) पत्रिका के वे संपादक हैं। वे एक सफल मंच-मर्मज्ञ कवि भी हैं। समीक्ष्य कृति में उनके विभिन्न विषयों पर आधारित 107 मुक्तक संकलित किए गए हैं।

आज के असंवेदनशीलता एवं असहिष्णुता के परिवेश में ज़रा-सी बात पर दिलों में गाँठ पड़ जाती है। अत: हमें किसी की भावनाओं से कभी खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। इसी प्रसंग पर आधारित कृति का शीर्षक मुक्तक उद्धरणीय है- कभी कुछ चूक हो जाए तो तिल का ताड़ मत करना / ज़रा-सी बात पर रिश्तों को तुम दो फाड़ मत करना / दिलों में गाँठ पड़ जाए तो फिर मुश्किल से खुलती है- / किसी की भावनाओं से कभी खिलवाड़ मत करना।

पक्षी और वृक्षों का अटूट संबंध होता है। यदि हमें पक्षियों के कलरव से प्रेम है, तो हमें उनके लिए दाना-पानी और प्राकृतिक आवास का प्रबंध करना ही होगा। कवि के शब्दों में- चमन गुलज़ार होने दो कि चिड़िया चहचहाने दो / रखो मुँडेर पर पानी, मिटे कुछ भूख, दाने दो, / उदासी बढ़ रही है रोज़, सन्नाटा पसरता है- / लगाओ नीम, पीपल, आम, बुलबुल को तराने दो।

आज की दूषित राजनीति में महँगाई-बेरोज़गारी जैसे वास्तविक मुद्दों से जनता का मन भटकाया जा रहा है, जिसके कारण लोकतंत्र लाचार होकर रह गया है। यथा- कल तक जिन से नफ़रत थी कुर्सी की ख़ातिर प्यार दिखे, / हर नेता को बस चुनाव में अपनी ही सरकार दिखे, / सब विकास की बातें अंजुम थकी-थकी-सी लगती हैं- / जाति-धर्म के हंगामे में लोकतंत्र लाचार दिखे।

इसी प्रकार चुनाव आते ही वोटों की जुगाड़ में तथाकथित नेतागण एड़ी-चोटी एक कर देने को विवश हो जाते हैं। ज़रा देखिए- गले सभी को लगा रहे हैं नेता जी, / प्यार सभी से जता रहे हैं नेता जी, / जहाँ-जहाँ भी मूछें ऊँची करते थे- / पूँछ वहाँ पर हिला रहे हैं नेता जी।

समीक्ष्य कृति के अंत में अशोक अंजुम का उपलब्धिपरक जीवन-परिचय संकलित है। नए अंदाज़ एवं नई भाव भंगिमाओं पर आधारित मुक्तकों की यह कृति पाठकों को पसंद आएगी। पुस्तक आकर्षक, पठनीय एवं संग्रहणीय है।

000

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, बावन चुंगी चौराहा, हरदोई 241001 (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल- 7607983934

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

रॉकी अहमद सिंह

समीक्षक : रीता कौशल

लेखक : संजीव जायसवाल 'संजय'

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन

रीता कौशल
पर्थ, वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया
मोबाइल- +61402653495
ईमेल- rita210711@gmail.com

संजीव जायसवाल 'संजय' का कहानी संग्रह 'रॉकी अहमद सिंह' अपने अनोखे शीर्षक के कारण एक कौतूहल जगाता है। इस पुस्तक में कुल मिलाकर बारह कहानियाँ हैं। पाठक के बहुमूल्य समय को सार्थकता प्रदान करती इस संग्रह की प्रथम कहानी 'उसकी रोटी' का एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य अपने भीतर झाँक कर आत्ममंथन के लिए उद्वेलित करता है। 'संकट में साया भले ही साथ छोड़ जाये पर भूख पूरी वफा निभाती है' जैसे कितने ही सूत्र वाक्य इस कहानी में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे पड़े हैं और मनुष्य की मनुष्यता पर प्रश्न खड़े कर देते हैं। दूसरी कहानी 'गुनाह' में उर्दू तहज़ीब की ख़ूबसूरती का रेशा-रेशा महसूस करने लायक है। हालाँकि एक जागरूक पाठक में इस बात की आशंका प्रारंभ में ही जाग जाती कि रजनी का बलात्कारी ही रज़िया का होने वाला पति है। फिर भी इस कहानी का सुखद अंत पाठकों की कल्पना के परे रहा है। तीसरी कहानी 'रॉकी अहमद सिंह' का नायक स्व की पहचान के लिए तरसता एक सीरियल किलर नौजवान है। आपराधिक मनोवृत्ति की सूक्ष्म पड़ताल करती ये कहानी, अंत में नायक के हृदय परिवर्तन के साथ सच्चे प्रेम को ऊँचाइयाँ प्रदान करती, चुपके से बतला जाती है कि परिस्थितियोंवश कोई भी मनुष्य कितना भी बुरा क्यों न बन जाए, किंतु उसमें मनुष्यता का कुछ अंश अवश्य जीवित रहता है।

चौथी कहानी 'क्रांति शुरू होती है' एक बेहद सशक्त कहानी है। आंचलिक भाषा का सटीक-सुंदर प्रयोग कहानी के कथानक में प्राण फूँक देता है। मुग्ध पाठक इस कहानी को पढ़ते हुए अपने मन की आँखों से कथा के बिंबों को घटता महसूसता है। कहीं-कहीं हास्य का पुट भी है, जो एक अत्यंत गंभीर विषय से उलझते पाठक को राहत के चंद पल देकर अगली पंक्ति पर सहजता से 'नेविगेट' कर देता है। सदियों से चला आ रहा एक घृणित चलन, धनाढ्य व ताकतवरों के द्वारा ग़रीब का शोषण इस कहानी की पृष्ठभूमि में है, किंतु लेखक ने कहानी का ताना-बाना अपने अनूठे अंदाज़ में रचकर कथ्य को नवीनता प्रदान की है। पाँचवीं कहानी 'तुम निहारिका नहीं हो' का सुखद अंत पाठकों को भला प्रतीत होता है। शिल्प के दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट कहानी रही है। वहीं छठी कहानी 'क़र्ज़' की कथावस्तु अंत तक पाठक को बाँधे रखती है। कुछ हद तक इस कहानी में पटकथा के अवयव भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहानी 'आख़िरी सलाम' एक सेनाधिकारी के कारगिल युद्ध में शहादत की अदम्य गाथा है। कहानी को शहीद के पाँच वर्षीय पुत्र के दृष्टिकोण से गढ़ा गया है। इस कहानी के लिये हृदयस्पर्शी, मार्मिक जैसे शब्द हल्के ही प्रतीत होते हैं। कहानी प्रारंभ से ही पाठक के मन को भिगोती है और समाप्त होने पर पाठक के मन-प्राण में धड़कती रह जाती है। कहानी 'बेड़ियाँ' में पाखंडी स्वामी को एक भक्त द्वारा सबक सिखाये जाने पर 'नहले पर दहला' कहावत का बरबस स्मरण हो आता है। ऐसे करारे सबक पर पाठक का मन बाग-बाग हो जाता है, किंतु इस पूरी कहानी में 'महाराज' शब्द की वर्तनी में त्रुटि अखरती रहती है। 'मंजिल के करीब' कहानी में मंच के दृश्य का दृश्यात्मक वर्णन पाठकों के मन की आँखों में सजीव हो जाता है। आख़िरी कहानी एक हल्की-फुल्की कहानी है। कथानक की दृष्टि से जरा कमज़ोर कहानी रही है। कहानीकार ने इसे पुस्तक के अंत में रख कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

कुल मिलाकर ये कहानी संग्रह पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी है। घटनाओं का मार्मिक चित्रण, समस्या का निदान, लालित्यपूर्ण भाषा इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता हैं। संवेदनाओं की सूक्ष्म पड़ताल करती हर कहानी का रूप-रंग-भाषा अलग है। यद्यपि संग्रह की कई कहानियों की पृष्ठभूमि अलग होते हुए भी उनमें पुरुष द्वारा स्त्री के शरीर को पाने की चेष्टा की समानता नज़र आती है। फिर चाहे यह लालसा स्त्री से बदला लेकर उसे नीचा दिखाने के लिए हो या उसके चरित्र की परीक्षा के लिये। ये नायिकाएँ परिस्थितियों से हार नहीं मानती हैं बल्कि उनका जमकर मुकाबला कर समाज के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। नायिकाओं का यही गुण कहानियों को अतिरिक्त ऊँचाई प्रदान करता है।

000

पुस्तक समीक्षा

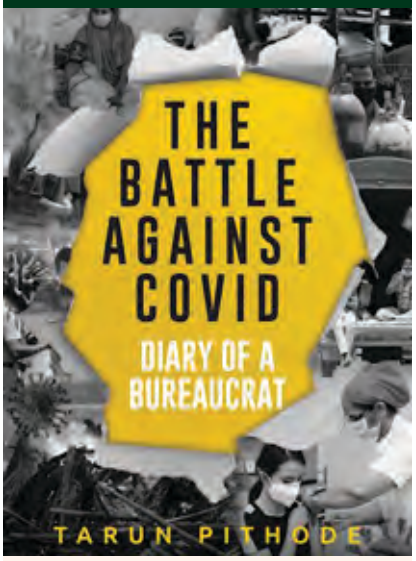

(डायरी)

द बैटल अगेंस्ट कोविड डायरी ऑफ ए ब्यूरोक्रेट

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : तरुण पिथोड़े

प्रकाशक : ब्लूम्सबरी

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

भोपाल के कलेक्टर रहे भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी तरुण पिथोड़े की किताब द बैटल अगेंस्ट कोविड डायरी ऑफ ए ब्यूरोक्रेट इस मायने में अनोखी किताब है कि उन्होंने देश प्रदेश और भोपाल शहर में आई कोरोना की महामारी के पहले से लेकर हज़ार केस के आने और उससे कैसे मुकाबला किया, उसकी कहानी रोचक अंदाज़ में कही है।

देश में कोविड का पहला केस भले ही 27 जनवरी 2020 को आया हो मगर मध्यप्रदेश में कोविड का पहला केस जबलपुर में 20 मार्च 2020 को सामने आया और इसी के साथ ही देश और दुनिया में जंगल की आग की तरह कोरोना फैलने लगा। कोरोना से कैसे निपटें, इसके लिये रणनीति बनने लगी। आइसोलेशन वार्ड या सेंटर कहाँ कैसे बनाये जाएँ, यह सोचा जाने लगा। भोपाल के अस्पताल इस बीमारी से आने वाले मरीजों के लिये तैयार हैं या नहीं, इसका अनुमान लगाया जाने लगा। भोपाल प्रशासन नगर निगम और स्वास्थ्य विभाग के साथ एम्स ने मिलकर रणनीति बनाई और नेशनल डिज़ास्टर एक्ट के तहत नए-नए आदेश जारी किये गए। मगर भोपाल में पहला केस लंदन से लौटी लड़की का आया, जिसके पिता कमलनाथ के इस्तीफे के ऐलान वाली पत्रकार वार्ता में पहुँचे थे और जब उनकी कांटेक्ट ट्रेस की गयी तो उनसे डेढ़ सौ से ज़्यादा लोग मिले थे।

लेखक के सामने बड़ी चुनौती देश और विदेश से लौटकर आ रहे लोगों को ट्रेस करने, उनकी टेस्टिंग और आइसोलेशन की थी। यह काम कैसे प्रभावी तरीके से किया जाए, इसके लिये नगर निगम कमिश्नर, डीआईजी और प्रशासनिक अधिकारियों की अनेक बैठकें हुईं। इसके अलावा भोपाल के संकीर्ण और सँकरे इलाकों में रहने वाले लोगों के बीच कैसे कोरोना का फैलाव रोका जाए, यह ऐसा काम था जिसे सोच कर ही लेखक के हाथ-पैर फूल जाते थे। कोरोना के विस्तार को रोकने लॉकडाउन एक उपाय तो था मगर इस लॉकडाउन के चलते शहर की बड़ी आबादी को रोज़मर्रा की ज़रूरत की चीज़ें कैसे मिलें, यह भी बड़ा टास्क था। दूध, सब्ज़ी, किराना कैसे उपलब्ध हो, इसके लिये लगातार नई-नई योजनाएँ बनती- बिगड़ती रहीं।

पुराने भोपाल के जहाँगीराबाद में कोरोना ज़ोरों से फैला था। उस इलाके से संक्रमित लोगों को निकाल कर आइसोलेशन सेंटर में रखना भी ऐसा काम था, जिसमें आमतौर पर जनता सहयोग नहीं करती थी। मगर वह काम करना ज़रूरी था। इलाके में अपनी पहचान रखने वाले नए-नए अफसरों को इस काम में लगाया और यह काम भी किया। ज़रूरत के काम के लिये लोगों की आवाजाही कम करना भी बड़ा काम था। कलेक्टर तरुण के साथ डीआईजी इरशाद वली ने लगातार सड़कों पर रहकर जनता को समझाइश दी कि ज़रूरत पर ही निकलें, इसका असर हुआ। महामारी में पुलिस, नगर निगम और अस्पताल के कर्मचारी रात-दिन काम करते थे। उन कर्मचारियों को लगातार काम के लिये प्रेरित करना भी बड़े अफसर का बड़ा काम होता है। इसके अलावा इस किताब में वो प्रसंग बड़े भावुक हैं, जिनमें लेखक और डीआईजी अपने घरों से दूर रेस्ट हाउस में रहते थे और जब दिन में एक बार घर जाते थे, तो बच्चे पूछते थे आप वापस घर में कब रहने आओगे, तो जबाव नहीं सूझता था। इस लम्बी चलने वाली आपदा में अफसरों को कैसे रातों की नींद और दिन का सुकून त्यागना पड़ता है, इस किताब में तरुण ने बेहतर तरीके से अपनी मर्यादा में रहकर बताया है। भोपाल के पहले बड़े निजी कोविड अस्पताल- चिरायु कैसे मेडिकल कॉलेज से कोविड अस्पताल बना, इसके बारे में भी किताब में अच्छा उल्लेख है। ये सारी वो बातें हैं, जो कभी सामने नहीं आतीं।

भोपाल के अलावा पीलीभीत, गांधी नगर, रूपनगर, मुंबई और दिल्ली में प्रशासनिक अफसरों ने किस रणनीति से कोविड का मुकाबला किया, वह भी तरुण ने अपने इस किताब में विस्तार से लिखा है। मगर भोपाल की कहानी पढ़ते-पढ़ते बीच में दूसरे शहरों की ये कहानियाँ किताब का प्रवाह तोड़ती हैं। कुछ और बेहतर किस्सों की उम्मीद इस किताब में की गई थी, जो पूरी नहीं हुई। आपदा में आये राजनीतिक दबाव की बातें भी होतीं, तो किताब और रोचक होती।

000

पुस्तक समीक्षा

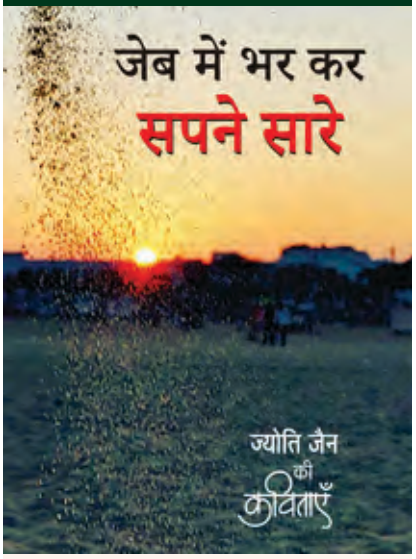

(कविता संग्रह)

जेब में भर कर सपने सारे

समीक्षक : निधि प्रितेश जैन

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

निधि प्रितेश जैन
130बैकुंठ धाम कॉलोनी
आनंद बाजार के पीछे
इंदौर - 452018
मोबाइल- 9300422111

विषम परिस्थितियों में भी रचनाधर्मिता को निभा जाना एक स्त्री के बूते की ही बात है फिर, बीते दो साल तो विश्व त्रासदी के समय के रहे, ऐसे में एक रचनाकार कोई रचना करता है, तब उसकी ज़िम्मेदारी दुगनी हो जाती है। घर-परिवार, समाज, देश तो बाद में, पहले व्यक्ति विशेष को सम्बल, सकारात्मक राह दिखाना, लेखक का नैतिक कर्त्तव्य बन जाता है और इस कर्त्तव्य का निर्वाहन यह पुस्तक बखूबी करती है। पुस्तक के शीर्षक से ही मन में बचपन की शोखी और अपनी जेब में कुछ भरे होने का विश्वास जगता है। पुस्तक को हाथ में लेते ही, पहली नज़र में ऐसा लगता है मानों, आसमान से सपने बरस रहे हैं, जैसे ही कोई सपना पूरा होगा, वह सूरज के समान आप के आस-पास उजास फैला देगा। यह सपने कविताओं के रूप में भीतर पन्ने दर पन्ने हमें कल्पना लोक के स्थान पर ज़मीनी सच्चाइयों से रू-ब-रू भी कराते हैं ।

'वियोगी पहला होगा कवि'... की धारणा को बदलते हुए ज्योति जैन कहती हैं कि कविता सिर्फ आह से नहीं निकलती है, वह तो आनंद के क्षणों में भी मन की धरा पर बारिश की बूँदों सी बरसती है। इन्हीं भावों के साथ उन्होंने इस पुस्तक को समर्पित किया है। वरिष्ठ साहित्यकार चित्रा मुदगल की संक्षिप्त बात से पुस्तक प्रारम्भ होती है, जिसमें वे इस पुस्तक को भविष्य की एक बड़ी रेखा मानती हैं और पुस्तक लेखिका ज्योति जैन अपनी बात का सार इन शब्दों में - "कविता स्वयं मुखर हो कर अपने भाव पाठक को सम्प्रेषित कर दें, वही कविता है।" कहती हैं। वे मात्र भावों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं बल्कि, सामाजिक सरोकार रखते हुए अपने लेखन को किसी विधा में बाँधने की बजाए स्वतन्त्र रहना पसंद करती है।

गाँठ, अपना-पराया, मैं अग्नि, देवदूत सहित अन्य कई जगहों पर उनकी कविताएँ 'लघु काव्य कथा' सी प्रतीत होती हैं। जो कविता होते हुए भी लघुकथा की तरह ही अंतर्मन में एक चेतना जगा देती हैं। जैसे 'अस्तित्व' कविता में कवयित्री द्वारा कहा है - क्यों कोसते हैं /अँधेरे को /हम सब मिल कर ?/जानते हुए भी /कि नन्हें जुगनुओं का/अस्तित्व है/तो/सिर्फ, इसी अन्धकार से। इसी तरह 'फूल और काँटे' कविता आपके सुख-दु:ख के समीकरण को बदल कर रख देती है। करीब 102 कविताओं को तीन मुख्य शीर्षकों (स्त्री, प्रेम, विविध) में समेटा है, जिसके अंतर्गत स्त्री और चाँद, पतंग हूँ मैं, बँटवारा शीर्षक पर एक से ज़्यादा कविताएँ लिखी गई हैं। कविताओं को लेकर एक नया प्रयोग भी इस तरह दिखाई देता है कि, ज्योति जैन ने अपनी पाँच पूर्व किताबों के नाम (जलतरंग, भोरबेला, मेरे हिस्से का आकाश, बिजूका, सेतु) पर भी कविताएँ लिखी है। तो कहीं विरोधाभासी शब्द-युग्म को भी शीर्षक बनाया है। जिसमें ख़ामोश शोर, शीतल ताप प्रमुख है।

शब्द चयन को लेकर सर्वत्र सजगता परिलक्षित होती है। पहली ही कविता की दूसरी पंक्ति 'भुरुकुवा' जैसे लोक भाषा के शब्दों को 'मन के तहखानों' से निकाल कर पुस्तक में 'लोहांग' सा चितेर देती है। कविता में भाषा शैली चाटुकारिता, आत्म श्लाघा और दूसरों की तरफ उँगली उठाने वाली न हो कर संक्षिप्त, प्रभावी एवं आत्मावलोकन वाली प्रयुक्त हुई है, इसी तरह शृंगार, वात्सल्य, रस होते हुए भी किताब में कहीं भी भावों की अतिव्यंजना नहीं दिखाई दी है बल्कि, कविताएँ - स्त्री के हाथों में बजी चूड़ियों की खनखन सी प्रतीत होती हैं। जो यह सन्देश देती है कि, मन में स्त्री होने का गौरव लिए पतंग सी उड़ती रहूँ, जिसकी डोर धरा पर रहे और जेब में भर कर सपनों को चल सकूँ, तारे न मिले तो ग़म नहीं, भोर होने पर मुट्ठी भर धूप लाऊँगी।

खाली कागज़ पर लेखिका सिर्फ शब्दों, भावों और आधुनिकता के साथ नवचेतना का जादू बिखेरती हैं। समस्याओं पर अधीर हो कर समाधान की खोज में निकल पड़ती हैं। आप इस पुस्तक को पढ़ते हुए पाएँगे कि, ये सारी कविताएँ हमारे आस-पास की पृष्ठभूमि से ही उभरी हैं।

रसज्ञ पाठकों के साथ, साहित्य में नवीनता चाहने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए और प्राचीन के हितेषियों को भी, ताकि वस्तुस्थिति का आकलन हो सके। एक आवश्यक कविता संग्रह है यह।

000

पुस्तक समीक्षा

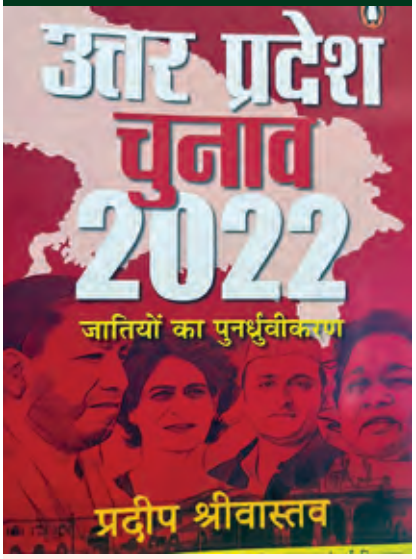

(रिपोर्ताज)

उत्तर प्रदेश चुनाव 2022

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत

लेखक : प्रदीप श्रीवास्तव

प्रकाशक : पेंगुइन हिन्द पाकेट बुक्स

ब्रजेश राजपूत
ई-109/30
शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025
ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

क्यों इस प्रदेश में हैं सबसे ज्यादा राजनीतिक दल। क्यों इस प्रदेश के लोगों के सीने में हर वक्त राजनीति धड़कती है। क्या है इस विशाल प्रदेश की ऐतिहासिक धरोहर और संस्कृति जिस पर यहाँ के लोग गर्व करते हैं। इन सारे उलझे हुए सवालों के सीधे-सीधे जबाव आपको वरिष्ठ पत्रकार प्रदीप श्रीवास्तव की किताब 'उत्तर प्रदेश चुनाव 2022 जातियों का पुनर्धुवीकरण' में मिल जायेगा। नौ अध्यायों में बँटी दो सौ पन्नों की इस किताब में उत्तर प्रदेश की राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि को विस्तार से बताया गया है। मुगलों, अंग्रेज़ों से होते हुये 1902 का यूनाइटेड प्रोविंस आफ आगरा एंड अवध कैसे 1937 में यूनाइटेड प्रोविंस और फिर आज़ादी के बाद 1950 में उत्तर प्रदेश यानी कि यूपी बना। 1902 में जहाँ इसकी राजधानी इलाहाबाद थी, जो 1920 में लखनऊ हो गयी। तेईस करोड़ की आबादी वाले पचहत्तर ज़िलों को लेकर बना यह राज्य कैसे आज़ादी के पहले से लेकर अब तक राष्ट्रीय राजनीति में अपना अलग दबदबा बनाए हुये है, इसकी वजह लेखक ने किताब में विस्तार से बतायी है। भगवान राम और कृष्ण से लेकर बुद्ध, तुलसीदास, कबीर, सूरदास, रविदास, अमीर खुसरो के अलावा आज़ादी के बाद कैसे वरिष्ठ साहित्यकारों और जाने-माने लेखक पत्रकारों की भूमि रही है उत्तर प्रदेश या यूपी। मगर यूपी इन सबसे अलग अपनी राजनीति के लिये जाना जाता रहा है। बड़े, क़द्दावर नेताओं के गढ़ रहे यूपी ने पंडित जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, पुरुषोत्तम दास टंडन, राममनोहर लोहिया से लेकर इंदिरा गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव गांधी, चंद्रशेखर, वीपी सिंह मुलायम सिंह, मायावती और योगी आदित्यनाथ तक की राजनीति देखी है। यही यूपी मंडल से लेकर कमंडल तक की राजनीति का गढ़ रहा है। 1950 से 2022 तक 21 मुख्यमंत्रियों के चेहरे देख चुके यूपी की राजनीति सवर्ण से लेकर पिछड़ा और फिर दलित मुख्यमंत्री तक बहुत बदली है। इस विशाल प्रदेश की हर कुछ सालों में बदलती राजनीति को कम पन्नों में समेटने की कोशिश लेखक पत्रकार प्रदीप श्रीवास्तव ने की है।

प्रदीप लिखते हैं कि 1952 से लेकर 2017 तक हुए विधानसभा चुनावों में प्रदेश में अगड़ी जातियों का ही वर्चस्व रहा है। जबकि अगड़ी जातियों का राज्य में प्रतिशत बीस फीसदी से ज़्यादा नहीं है। 1990 तक बीच में एक बार रामनरेश यादव को छोड दें, तो हमेशा अगड़ी जाति के नेता को ही प्रदेश की बागडोर मिली। मगर 1991 से स्थिति बदली और 2017 तक पिछड़े या दलित जाति के नेता प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। विधानसभा में भी सवर्ण जाति के विधायकों की संख्या थोड़ी कम हुई, मगर उतनी नहीं जितनी आबादी के हिसाब से होना चाहिए। इस विशाल प्रदेश की राजनीति की अस्थिरता देखिये कि सत्तर सालों में सिर्फ तीन मुख्यमंत्री ही अपना कार्यकाल पूरा कर पाए। मायावती, अखिलेश यादव और योगी आदित्यनाथ को छोड दें, तो बाकी के मुख्यमंत्री आते और जाते रहे। मुख्यमंत्रियों के लगातार बदलने से प्रदेश का विकास पटरी से उतरा ही रहा और प्रदेश के लोग शिक्षा, बेरोज़गारी और विकास के पैमानों पर दूसरे राज्यों से पीछे ही रहे। यूपी की राजनीति ने 2022 के विधानसभा चुनाव से एक बार फिर करवट बदली है। पिछड़ों में भी अब अति पिछड़ा और दलितों में भी अति दलित वर्ग के लोग सामने आए हैं और राजनीति में अपनी हिस्सेदारी के लिये छोटे-छोटे राजनीतिक दल बनाकर मैदान में उतरे हैं। किसी खास जाति से जुड़े इन दलों की ताकत बड़ी पार्टियों ने पहचानी है, इसलिए इन दलों को बीजेपी और सपा दोनों ने गठजोड़ कर पहचान दी है। सपा बसपा के अलावा अपना दल, निषाद पार्टी, सुहेलदेव, भारतीय समाज पार्टी, पीस पार्टी, जाति और समाज आधारित पार्टियाँ हैं जो 2022 के चुनावों में जमकर ज़ोर लगा रही हैं। विधानसभा चुनावों के ठीक पहले आई ये किताब प्रदेश की राजनीति की कई परतें खोलती हैं और चुनावों को समझने का नया नज़रिया भी देती है। किताब में यही कमी खली कि लंबे समय से राजनीतिक लेखन कर रहे वरिष्ठ पत्रकार और इस किताब के लेखक के ज़मीनी अनुभव और नेताओं से चर्चाओं का ज़िक्र इस किताब में कम है। यदि यह भी होता तो ये किताब ज़्यादा रोचक भी होती।

000

मधु कांकरिया के उपन्यासों एवं कहानियों में आदिवासी जीवन की समस्याएँ

शोध : मुनेन्द्र भाटी
शोधार्थी
हिन्दी विभाग एन.ए.एस. महाविद्यालय, मेरठ

मुनेंद्र भाटी
धर्मेंद्र छपराना
ग्राम-पोस्ट- पंचली खुर्द
बागपत रोड, मेरठ उप्र 250002
मोबाइल- 9

आदिवासी समुदायों से संबंधित साहित्य के माध्यम से जहाँ आदिवासी साहित्यकार बहुत ही गहनता और गंभीरता के साथ आदिवासी जन जीवन की समस्याओं को समाज के सम्मुख लाने का कार्य कर रहे हैं, वहीं आदिवासी समुदाय से इतर साहित्यकारों द्वारा भी इस दिशा में अच्छा योगदान दिया जा रहा है।

समकालीन साहित्य में कुछ नए मुद्दों ने अपनी अभूतपूर्व उपस्थिति दर्ज की है- दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्री साहित्य, थर्ड जेंडर साहित्य, और वृद्ध विमर्शीय साहित्य। समाज में विद्यमान हाशियाकृत समुदायों की अस्मिता की अपनी स्थान एवं परिवेश के अनुसार अलग-अलग समस्याएँ हैं, जिसका प्रमुख कारण है सुविधाभोगी समुदायों द्वारा इनकी दीर्घकाल से उपेक्षा। साहित्य की विभिन्न विधाओं में जो साहित्य हाशियाकृत समुदायों को लक्ष्य करके रचा गया, वह दलित,आदिवासी, स्त्री, थर्डजेंडर, वृद्ध विमर्शीय साहित्य के रूप में जाना जाता है। साहित्य विमर्शों के नामकरण के पीछे कई मत हैं। जैसे दलित साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य ही दलित साहित्य है। इसी प्रकार आदिवासियों एवं स्त्रियों द्वारा रचित साहित्य के बारे में विद्वानों के मत हैं। इसी दृष्टि से थर्ड जेंडर, वृद्ध एवं अन्य विमर्शीय साहित्य के बारे में भी नाना प्रकार के मत हैं। जो साहित्य इन वर्गों से संबंधित न होते हुए भी लिखा गया है, उसे संवेदना का साहित्य तो माना ही जाना चाहिए। क्योंकि बहुत से ऐसे समुदाय हैं जिनमें शिक्षा का प्रचार प्रसार न के बराबर है। अशिक्षित समुदायों के संबंध में रचा गया साहित्य भी तो साहित्य है ही, इसलिए उसे भी संबंधित विमर्श का साहित्य माना जाना चाहिए। हो सकता है कि उसकी समीक्षा पक्ष या विपक्षीय दृष्टि से की जा सकती है।

भारत में लगभग 18 से 20 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी समुदायों की है। यद्यपि उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। परंतु आर्थिक संरक्षण के अभाव में उन्हें दैनिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति के लिए प्रतिदिन संघर्ष करना पड़ता है। खेदजनक है कि स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी आदिवासी आदिम अवस्था में जीवन यापन करने के लिए विवश हैं। लेकिन धीरे-धीरे

समाज के बुद्धिवादी वर्ग का ध्यान आदिवासियों की ओर आकृष्ट हो रहा है। सम्प्रति, आदिवासियों के जीवन को साहित्य में अभिव्यक्ति प्राप्त हो रही है।

आदिवासी साहित्य धारा का प्रारंभ अधिकांशत: गीत या कविता के माध्यम से हुआ। आदिवासी कवियों में वाहरु सोनवणे, हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, केशव मेश्राम, महादेव टोप्पो, डॉ. रामलाल मुंडा, दीनानाथ मनोहर, आदि का नाम उल्लेखनीय माना जाता है। डॉ. मंजू ज्योत्स्ना ने 'ब्याह' कविता, सरिता बड़ाइक 'मुझे भी कुछ कहना है' आदि सशक्त आदिवासी विमर्शीय कविताएँ प्रस्तुत की। आदिवासी रचनाकारों की कविताओं में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन-संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से उकेरी गईं। लोकगीत, लोककथाओं के मौखिक रूप में प्राप्त आदिवासी साहित्य की असम, मिजोराम, नागालैंड, मणिपूर, झारखंड आदि में आदिवासी आंदोलन अपनी अस्मिता के अन्वेषण का प्रयास करती रहीं। कवियों, कहानीकारों एवं उपन्यासकारों ने बोड़ो साहित्य की समृद्ध परंपरा देखी जा सकती है।

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की तीव्रता ने आदिवासी शोषण की प्रक्रिया को भी अपेक्षाकृत रूप से तीव्र किया और उसी के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर साहित्यिक आंदोलन का ही परिणाम आदिवासी साहित्य है। न सिर्फ आदिवासी बल्कि गैर-आदिवासी रचनाकारों ने भी इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और वर्तमान में भी ले रहे हैं। आदिवासी साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ इत्यादि शेष साहित्य की तुलना में पर्याप्त रूप से उसी प्रकार भिन्न है, जिस प्रकार आदिवासी समुदाय, समाज तथाकथित मुख्यधारा से आज भी पृथक है। अस्मिता की तलाश, शोषण के विरूद्ध आवाज़ के रूप में आदिवासी साहित्य, सवर्णों या सुविधाभोगी समाज के प्रतिरोध का साहित्य है।

भारतीय साहित्य जगत् में आदिवासी जनजीवन, संघर्ष को प्रमुखता से उठाने का कार्य कई पत्र-पत्रिकाओं ने किया जिनमें 'युद्धरत आम आदमी' , 'अरावली उद्घोष', 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा', 'आदिवासी सत्ता' आदि मुख्य मानी जाती हैं। मुख्यधारा पत्रिकाएँ मानी जाने वाली 'समकालीन जनमत' 'दस्तक', 'कथाक्रम', 'इस्पातिका' आदि की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही। मीडिया के क्षेत्र में 'तरंग भारती' (पुष्पा टेटे), 'देशज स्वर'(सुनील मिंज) तथा सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन' (शिशिर टुडु) ने भी प्रमुखता के साथ संघर्ष का अलख जलाए रखा है।

गोपीनाथ मोहांती ने ओड़िया भाषा में 'अमृत संतान' और 'प्रजा' आदि उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी साहित्य की यात्रा में योगदान दिया। 'किस्सागो' को आदिवासी साहित्य हेतु नोबेल पुरस्कार से सम्मान प्राप्त हुआ। 'ग्लोबल गाँव के देवता' (रणेन्द्र), 'धूणी तपे तीर' (मीणा) इस दिशा के सफल उपन्यास हैं।'पथेरा' (किशन पाल परख), 'हमलावर' (विपिन बिहारी), 'एकलव्य' (परमानंद राम), 'कोलार जल रहा है' (शीलबोधी), 'सीता-मौसी' (रमणिका गुप्ता) 'बहू जुठाई', 'भीड़ सतह में चलने लगी है', भला मैं कैसे मरती', संग्रह 'आदमी से आदमी तक'), 'विज्ञापन बनते कवि' (रमणिका गुप्ता), 'नन्हें सपनों का सुख' (सरिता बड़ाइक), 'आदिवासी कहानियाँ' (केदारनाथ मीणा), 'भँवर' (कैलाश चन्द्र चौहान) आदि लेखकों ने आदिवासी जीवन पर जो रचनाएँ लिखीं वे विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी का कथा-साहित्य गहन और व्यापक हैं। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास एक लोकप्रिय विधा रही है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, थर्डजेंडर विमर्श और आदिवासी विमर्श को दृष्टि में रखकर उपन्यासों का सृजन अच्छी मात्रा में हो रहा है। आदिवासी विमर्श केंद्रित उपन्यासों की अब तक लंबी परंपरा रही है कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा-''आदिवासियों के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिंदु अपनी तूलिका से जड़ देता है। अनेक पर्वो, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नए जीवन-मूल्यों से लिपटा हुआ आदिवासियों का जीवन अभिव्यक्ति के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है।''(प्रो. के. बी. कलासवा, आदिवासी केंद्रित हिन्दी उपन्यास, पृ. 64) आदिवासी संघर्ष के संबंध में मधु कांकरिया लिखती हैं कि ''आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे, परन्तु आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया है।''(उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : आदिवासी केंद्रित हिन्दी साहित्य, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17)। मधु कांकरिया के अब तक खुले गगन के लाल सितारे, सलाम आख़िरी, पत्ताखोर, सेज पर संस्कृत, सूखते चिनार, हम यहाँ थे, कुल 6 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्केरित आदिवासी विमर्श को अग्रलिखित रूप में देखा जा सकता है –

'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में नक्सलवादी आंदोलन तथा उससे संबंधित क्रांतिकारियों के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। 1970 से 72 के मध्य कोलकाता के हाथीबगान क्षेत्र में हुई घटना उपन्यास के केंद्र में रखी गई है। आदिवासियों के दुख, दर्द, आक्रोश, वेदनाओं को शासन एवं देश के

कर्णधारों द्वारा किस प्रकार अनसुना कर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है आदि का चित्रण उपन्यास में प्राप्त होता है। मणि, इंद्र, गोपाली दा, कामरेड दिलीप विश्वास, शंभू, सुभाशीष जहाँ आदिवासी आंदोलन के प्रमुख पात्र हैं वहीं एंटी नक्सलाइट प्रमुख इंस्पेक्टर रमेन नियोगी प्रशासन का प्रतिनिधि है। 1967 ई में पश्चिम बंगाल के नलपाईगुड़ी से नक्सलवादी आंदोलन का छिड़ना आदिवासी संघर्ष के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। बिहार में गुमला-लोहरदगा जैसे आदिवासी अंचलों में रहने वाले आदिवासियों का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। अनपढ आदिवासी भले ही अशिक्षति एवं भोली प्रकृति के होते हैं परंतु अपनी संस्कृति से जुड़े हुए हैं। उनके अल्पजानकार एवं भोलेपन के कारण शहरवासी उन्हें लूटते हैं। भयंकर ग़रीबी में जीवन यापन करते हैं। कूडे-कचरे से अन्न के दाने चुनते हैं और अकाल में संतान तक को बेचने के लिए मजबूर होते हैं। इंद की यादों में भटकती हुई मणि बहुत वर्षों से अपने जीवन को किस दिशा में ले जाए उसका फ़ैसला तक नहीं कर सकी है। वस्तुत: मणि हर उस आदिवासी स्त्री का प्रतिनिधि कही जा सकती है जिसका पति आंदोलन में कूद चुका है। मधु कांकरिया इस उपन्यासों की स्त्री पात्रों के माध्यम से व्यक्तिगत संघर्षों के साथ-साथ आदिवासियों के पारिवारिक संघर्षों को भी बहुत ही गहनता के साथ प्रस्तुत करती हैं। नक्सलवादी आंदोलन में आदिवासियों के कई परिवारों की संतानें क्रांतिकारियों के आंदोलन के 'लाल सितारे' बन चुके हैं जिनका वापस आना सिर्फ उनकी स्मृतियों है या फिर गगन में। आदिवासियों की दयनीता का चित्रण करते हुए मधु जी इस उपन्यास में लिखती हैं –'' माँ घर में अंदर नंगी बैठी थी, आपको जाने देता तो बिगड़ जाती-माँ और दादी दोनों के पास एक ही साड़ी है न।''(खुले गगन के लाल सितारे, पृष्ठ सं.95)

आदिवासी चूँकि अशिक्षित होते हैं इसलिए अंधविश्वासी भी बहुत होते हैं। पहचान के लिए युवकों के बाएँ हाथ की कलाई पर चवन्नी एवं अठन्नी के निशान बनाए जाते हैं। उपन्यास का आदिवासी पात्र व्योमकेश बताता है-''बचपन में ही रूई को तेल में भिगोकर कलाई पर रख दिया जाता है, फिर उसे अग्नि से प्रज्ज्वलित कर दिया जाता है। जलती हुई चमड़ी की वेदना को सहन करना पुरुषार्थ की निशानी समझा जाता है। यदि कोई इसे सहन नहीं कर पाए तो इसे लज्जा की बात समझा जाता है।''(खुले गगन के लाल सितारे, पृष्ठ सं.100)

'सेज पर संस्कृत' में झारखंड के गिरिडीह नामक क्षेत्र के आदिवासियों की समस्याओं का चित्रण प्राप्त होता है। गिरिडीह पहाड़ पर मंदिरों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। मंदिर बनने पर आदिवासी खुश होते हैं और खाना मिलने के लिए आशान्वित होते हैं। आदिवासी महिला लेखिका से कहती है-''बनते रहे मंदिर....जब तक बनते रहेंगे, पेट में भात और दाना पड़ता रहेगा।''(सेज पर संस्कृत, पृष्ठ सं.19) यात्रियों को पहाड़ पर डोलियों में बिठाकर ले जाना तथा नए मंदिरों के निर्माण के लिए सामग्री ले जाना ही आदिवासियों के लिए रोज़गार का साधन है। डोली में यात्रियों को पहाड़ पर ले जाने एवं सामान को ले जाने के दौरान आदिवासी दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं। एक दिन एक डोली वाला स्वयं कई दिनों से भूखा होता है वह गिर पड़ता है, उसका घुटना टूट जाता है परंतु वह डोली में बैठे यात्री को बचा लेता है। यात्री उठता है और बिना किसी संवेदना के डोली का किराया 370 रुपये डोली वाले के साथी को दे चला जाता है। भूख और बेचारगी का चित्रण उपन्यास की एक घटना से सहज ही लगता है, जिसमें मुंबई से आया हुआ एक परिवार बची हुई बासी पूड़ियों की टोकरी को आदिवासियों के मध्य में फेंक देता है। उस मंज़र का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती हैं- ''चील की सी फुर्ती से डोलीवाले, बच्चे और उनकी स्त्रियाँ इस माल पर टूट पड़े थे। किसी के हाथ कुछ लगा तो कोई हाथ मलता ही रह गया।''(सेज पर संस्कृत, पृष्ठ सं 35)

मधु कांकरिया की कहानियाँ भी आदिवासी जन जीवन की समस्याओं को बहुत गहनता से प्रस्तुत करती हैं। कहानी 'भरी दोपहरी के अंधेरे' में पहाड़ी, बेबस आदिवासियों के जीवन को उकेरा है। पहाड़ों पर जीवन व्यतीत करते आदिवासी दो वक्त की रोटी के लिए दिन-रात संघर्ष करते हैं। पहाड़ों पर आदिवासियों को पहले तो काम नहीं मिलता और जब काम मिल भी जाता है तो 50 से 70 किलो का बोझ लादकर ये लोग डोली लेकर पहाड़ों पर चढ़ते हैं और मज़दूरी के रूप में 350 रुपया मात्र मिलता है। वह भी रोज़ नहीं मिलता। आदिवासी, तुरिया और मियाँ जाति के लोग अत्यंत निर्धनता में जीते हैं। ''का करेंगे बैनजी, हर धर्मशाला में हज़ार डोली वाला.....सब मिलाकर चार हज़ार डोली वाला.....मुश्किल से महिने में एको बार नंबर आती है।'' (भरी दोपहरी के अंधेरे और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 31) भोजनाभाव में शारीरिक दुर्बलता आम बात है, डोली उठाते हुए वे चक्कर खाकर भी गिर पड़ते हैं और शारीरिक रूप से क्षति झेलते हैं, जख्मी हो जाते हैं। जिन मंदिरों में यात्रियों को दर्शन कराने के लिए ये लोग डोलियाँ उठाते है, उन मंदिरों को यात्रियों को बहुत कमाई होती है, परंतु वे आदिवासियों की किसी भी परेशानी में सहायता नहीं करते हैं। ये डोलीवाले भी चुपचाप कष्ट सहते रहते हैं, क्योंकि यदि किसी प्रकार मंदिर तक सूचना पहुँच गई तो ''अगली बैर डोली भी नहीं मिलेगी। मैनेजर बोलेगा, ताकत नहीं है, डोली क्या खींचेगा।'' (भरी दोपहरी के अंधेरे और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 43) जो कमाई कभी-कभार हो जाती है वह भी नहीं होगी।

'महाबली पतन' कहानी में आदिवासी क्षेत्रों में असंतोष के फलस्वरूप फैल रही नक्सलवाद की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। 'कुल्ला' कहानी में आदिवासी समाज में स्त्री शोषण को दर्शाया गया है। इस कहानी की नायिका प्रमिला अपने पति से बेहद प्रेम करती है। पति जब काम से घर वापस आता है तो फूलों की डिजायन वाला बांबे डाइंग का गमछा आधा भिगोकर देती है। अपने आँचल से उसका मुँह पोंछती है। मनपसंद खाता बनाकर खिलाती है। उसकी हर सुख सुविधा का भरसक ख्याल रखती है परंतु उसका पति

उससे प्रेम नहीं करता। वह अपनी पत्नी को भैंस बराबर समझता है। पति के पसीने की दुर्गंध उसे असहनीय होती है फिर भी सहती है। एक दिन उसका पति उसकी पीठ पर कुल्ला दे मार देता है और पूछने पर पौरुषिक अहंकार में कहता है कि 'मज़ाक में थूक दिया। इतनी लाल पीली क्यों हो रही है।'' (कुल्ला और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 19)

मधु कांकरिया के कहानी संग्रह 'जलकुंभी' में 13 कहानियाँ प्रकाशित की गई हैं। इन कहानियों में भी पारंपरिक किस्सागोई का बहुत अच्छा परिलक्षण होता है। विशुनपुर के जंगल मधु कांकरिया को पहले से ही आकर्षित करते रहे हैं। 'खुले गगन के लाल सितारे' से लेकर इस संग्रह की कहानियों तक की पृष्ठभूमि में आदिवासियों के जीवन के अनुभव बार-बार आए हैं। 'दबी-दबी लहरें' ऐसी ही एक कहानी है, जहाँ आकर लेखिका आदिवासियों के नैसर्गिक जीवन व जंगल के एनजीओ के कार्यकलाप देखती और प्रसन्न होती है, पर इस बात से खिन्न भी कि कैसे लोगों ने वन्य पशुओं को जंगल से हकाल कर उन्हें बेदखल कर दिया है। यह कहानी आदिवासियों के मन में धीरे-धीरे सुलगती असंतोष की अग्नि की ओर इशारा करती है। इसमें एक आदिवासी स्त्री के कठिन जीवन की दास्तान है जो आदिवासियों के जीवन से आंतरिक स्तर तक जुड़े हुए लिख पाना संभव नहीं है।

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में हमें आदिवासी समाज में व्याप्त नक्सल, नशापान, बेरोज़गारी, निर्धनता, अनमेल विवाह, आत्महत्या, धार्मिक पाखंड, धर्मांतरण, पारिवारिक कलह, असफल प्रेम, भ्रष्टाचार, वेश्या, परित्यक्ता, भ्रूणहत्या, बलात्कार, स्त्री शोषण आदि का बहुत ही गहनता के साथ चित्रण किया है। खुले गगन के लाल सितारे, सलाम आख़िरी, उपन्यासों तथा ईशु, भरी दोपहरी के अंधेरे आदि के माध्यम से आदिवासी जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है। खुले गगन के लाल सितारे उपन्यास में आलोक भगत नामक पात्र 'वन बंधु कल्याण निकेतन' संस्था के माध्यम से आदिवासी कल्याण के कार्य करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन आदिवासियों की समस्याओं को हल करने के लिए समर्पित कर देता है। आख़री सलाम में नक्सलवाद और वेश्यावृत्ति को प्रमुख आधार बनाया गया है। बीतते हुए, भरी दोपहरी के अंधेरे, और अंत में ईशु तथा चिड़िया ऐसे मरती है आदि कहानी संग्रहों की कहानियों में आदिवासी जन जीवन में व्याप्त अनेकों समस्याओं को उठाया गया है। मधु जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में आदिवासी जीवन की समस्याओं का अंकन बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया है। उन्हें वे लोग शुरू से ही अच्छे लगते रहे हैं जो श्रमिक हैं, मज़दूर हैं, कामकाजी स्त्रियाँ हैं, सेक्स वर्कर्स हैं, बाल मज़दूर हैं, आदिवासियों के बीच काम करने वाले लोग हैं, परित्यक्ता स्त्रियाँ हैं, समाज-सुधार में लगी संस्थाएँ हैं, वे दबे-कुचले लोग हैं, जिनकी जिजीविषा मरी नहीं है। जो एक नई ज़िंदगी, नए भविष्य की ओर अग्रसर हैं। वे कहानी एवं उपन्यास लेखन कला में संवेदनासिद्ध साहित्यकार हैं। पठनीयता एवं कथ्य की प्रयोजनीयता और प्रासंगिकता उनके कथा साहित्य को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बनाती है।

000

संदर्भ -

1.प्रो. के. बी. कलासवा, आदिवासी केंद्रित हिन्दी उपन्यास, पृ. 64, 2.उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : आदिवासी केंद्रित हिन्दी साहित्य, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17, 3.मधु कांकरिया, खुले गगन केलाल सितारे, पृष्ठ सं.95, 4.मधु कांकरिया, खुले गगन केलाल सितारे, पृष्ठ सं.100, 5.मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृष्ठ सं.19, 6.मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृष्ठ सं. 35, 7.मधु कांकरिया, भरी दोपहेरी के अंधेरे और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 31, 8.मधु कांकरिया, भरी दोपहेरी के अंधेरे और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 43, 9.मधु कांकरिया, कुल्ला और अंत में ईशु, पृष्ठ सं. 19, 10.मधु कांकरिया, जलकुंभी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 136

नई पुस्तक

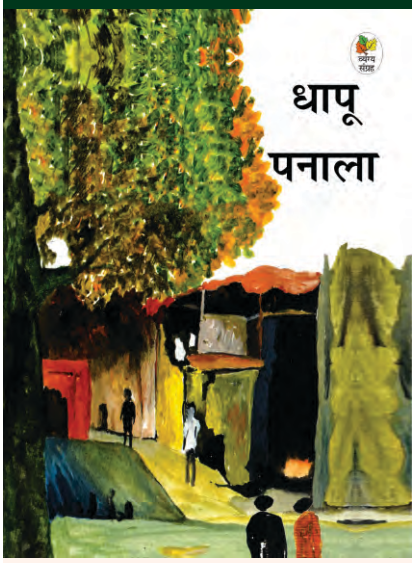

(व्यंग्य संग्रह)

धापू पनाला

लेखक : कैलाश मण्डलेकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

वरिष्ठ व्यंग्यकार कैलाश मण्डलेकर के 42 व्यंग्य इस व्यंग्य संग्रह धापू पनाला में संकलित किए गए हैं। वरिष्ठ व्यंग्यकार डा. ज्ञान चतुर्वेदी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- कैलाश जी लोकभाषा और बोली में इतने सहज और सटीक हैं कि वह उनके व्यंग्य की ताकत बनकर सामने आता है। कैलाश मण्डलेकर स्थानीय बोली के शब्दों के सटीक जगह इस्तेमाल के भी जादूगर हैं। अगर किसी एक बात के लिए बाद में कैलाश मण्डलेकर को व्यंग्य के इतिहास लेखक याद रखेंगे, तो वह है उनके व्यंग्य में भारतीय ग्रामीण परिवेश का वह खांटी भारत जो अब, अमूमन कहीं, किसी के व्यंग्य में दिखता ही नहीं, या बनावटी सा दिखता है। उस हिन्दुस्तान को व्यंग्य संसार में निरंतर धड़कते और जीवंत रखने का श्रेय तो दिया ही जा सकता है कैलाश मण्डलेकर को। जहाँ तक ख़ुद कैलाश मण्डलेकर की बात है तो वे तो अपने बारे में कभी ये सब दावे करने से रहे ! हिन्दी व्यंग्य के संकरे से संसार में मचे अहर्निश घमासान के बीच वे इस ग्रह के प्राणी लगते ही नहीं मुझे।

000

मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में आस्था और विचार दर्शन

शोध : डॉ. मोहम्मद फ़ीरोज़ खान

विचार मस्तिष्क से सम्बद्ध है। जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों, घटनाओं आदि के आधार पर विचार जन्म लेते हैं। रचनाकार सामाजिक गतिविधियों के प्रति सदैव सचेत रहता है। वह सामाजिक घटनाओं से पूरी तरह प्रभावित होता है और अपने विचारों को सर्जनात्मक रूप देकर समाज को प्रभावित करता है। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों वाले देश भारत में विभिन्नता के कारण पराया धर्म के नाम पर समस्याएँ जन्म लेती रही हैं। सबसे बड़ी जाति के रूप में भारत में हिन्दू और मुस्लिम दो धर्म हैं जिनके बीच मान्यताओं के विरोधाभास के कारण वर्षों से संघर्ष होता आ रहा है। देश का विभाजन इसी का परिणाम है। इन स्थितियों में भारतीय मुस्लिम उपन्यासकारों के मस्तिष्क में जन्में विचार उनके उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत हुए हैं।

धर्म वैश्विक धरातल पर मानव की सबसे बड़ी कमज़ोरी के रूप में दिखाई पड़ता है विशेषकर भारतवासी धर्म के नाम पर अत्यधिक संवेदनशील है। इसी का लाभ उठाकर ब्रिटिश साम्राज्य ने देश को विभाजित कर दिया और फूट डालो और राज्य करो नीति का विष ऐसा फैलाया कि उसका प्रभाव आज तक नहीं मिट सका। वर्तमान में राजनेता धर्म एवं जाति के नाम पर सत्ता हथियाने के हथकण्डे अपनाने में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। जबकि किसी भी धर्म में संदेश मानवता के विपरीत नहीं है वह सदैव एकता एवं बंधुत्व का संदेश देता है। डॉ. राधाकृष्ण भी धर्म को मानव समाज को अनुशासित रखने वाली शक्ति के रूप में माना है जो आत्मा से सम्बद्ध होने के कारण मानव जाति को द्वेष भाव से बचाकर मैत्रीपूर्ण व्यवहार का सन्देश देता है। धर्म एक ऐसी संस्था है जो मानव जीवन को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है तथा समाज को एक स्वरूप प्रदान करता है।

धर्म का अर्थ संकीर्ण सोच कदापि नहीं है। इस्लाम के नाम पर विचारों को मनुष्य को बाँटने का प्रयास किये जाने पर प्रतिक्रियात्मक विचार राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' उपन्यास में व्यक्त किया गया है। उपन्यास की पात्रा आसिया की दृष्टि मानववादी धर्म का समर्थन करती है। वह कहती है कि- "खाली इस्लाम से काम न चलत... दुनिया कौनो चीज़ है कि ना।"१ मुसलमानों में भी धर्म के प्रति अटूट आस्था है उन्हें इस्लाम की शक्ति पर पूरा विश्वास है। इस्लाम की सुरक्षा, पैग़म्बर के नवासे ने अपने पूरे कुनबे का बलिदान देकर शत्रु की यातना सहकर अग्नि परीक्षा से गुज़रते हुए की है। इसलिये इस्लाम की दृढ़ता पर मुसलमानों को बड़ा विश्वास है। नासिरा शर्मा ने 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास में लिखा है कि - "इतना ग़म यदि किसी और क़ौम पर पड़ता तो जाने कब की पागल हो जाती।"2 मुसलमानों में धर्म से जुड़ी गहरी आस्था में कहीं-कहीं गहरा अन्धा विश्वास भी दिखाई पड़ता है। 'सात आसमान' उपन्यास में असगर वजाहत धर्म से जुड़ी अंधी आस्थावादी विचारधारा को व्यक्त किया है- "यही कुआँ खोदो, इतना पानी निकलेगा कि कभी ख़त्म न होगा। इतना ज़्यादा पानी निकलेगा कि जो एक बार पी लेगा यहीं का हो जाएगा। ...भइया इस कुएँ का पानी पीने वाला कहीं दूसरी जगह बीमार पड़ जाए और लौटकर यहाँ आए, इस कुएँ का पानी पीये तो अच्छा हो जाता है।"3

विशेषकर अशिक्षित या कम पढ़े-लिखे मुसलमानों में धर्म से जुड़ी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उस पर उनका गहरा विश्वास दिखाई पड़ता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का आरम्भिक जीवन वाराणसी के उस वातावरण से प्रभावित हुआ था जहाँ श्रमिक वर्ग अपनी आस्था और विश्वास के साथ जीवनयापन कर रहे थे। जिन्हें बिस्मिल्लाह ने बहुत निकट से देखा था। उन्होंने 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में उसी श्रमिक समाज का चित्र प्रस्तुत किया है तथा धर्म के प्रति आस्था और विश्वास संबंधी विचार को व्यक्त किया हैं। यह विचार केवल उपन्यास में व्यक्त

डॉ. मोहम्मद फ़ीरोज़ खान
सम्पादक-वाङ्मय
205, फेज-1, ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड,
अलीगढ़- 2020002
मोबाइल- 7007606806

श्रमिक वर्ग का नहीं है अपितु यह विचार बहुत बड़ी संख्या वाले मुस्लिम समाज का है- ''खजूर अरब का मेवा है। इसे हमारे रसूले अरबी ने खाया है, इसलिए यह सुन्नत है। रोज़ेदार ने अगर खजूर से इफ़्तार किया तो अल्लाहताला बहुत खुश होंगे, क्योंकि यह उनके हबीब (ह०मु०) की प्रिय गिज़ा रही है।''4 यह मान्यता अच्छे शिक्षित मुस्लिम परिवारों में भी मिलती है और रमज़ान के महीने में खजूर से इफ़्तार करने की परम्परा जनसामान्य में प्रचलित हैं रमजान का महीना मुसलमानों के यहाँ सर्वाधिक पवित्र महीना माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस माह में नेकी बदी का हिसाब होता है। इबादत द्वारा गुनाहों की माफी करवाई जाती है। रोज़ा प्रत्येक मुसलमान पर वाजिब है। एक रोज़ा छूटने का गुनाह हज़ार रोज़े के बराबर है। इस मान्यता के प्रति गहरा विश्वास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में दिखाया गया है कि - ''उन्तीस को रमजान का चाँद नहीं दिखाई दिया पर बनारस के अधिकांश बुनकरों ने विशेषकर स्त्रियों ने दूसरे दिन से ही रोज़ा रखना शुरू कर दिया है। हो सकता है कि कहीं दिखाई भी पड़ गया हो एक रोज़ा अगर छूट गया तो हज़ार रोज़े टूटने का गुनाह होगा।''5

मुस्लिम समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्दा प्रथा अपवाद मात्र रह गई है। परन्तु अब भी परम्परावादी परिवारों में ऐसी स्त्रियाँ हैं जो परदे पर पूरा अमल करती हैं। राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में खानदानी औरत की दृष्टि में परदे के महत्त्व का उल्लेख किया है। उपन्यास की पात्रा सल्लो मृत्यु के निकट है वह वसीयत करती है कि- ''मेरा जनाजा रात के पर्दे में निकालना।''6

भारतीय समाज में धर्म के प्रति गहरा विश्वास, अंधी आस्था और उच्च शिक्षा के अभाव में रूढ़ियों का गहरा वर्चस्व है। यहाँ के लोग झाड़-फूँक आसेब आदि पर गहरा विश्वास रखते हैं। शानी ने 'काला जल' उपन्यास में ऐसे ही अंधविश्वासजन्य विचार को व्यक्त किया हैं - ''अपना-अपना विश्वास है, चाहे जिस पर जम जाए। ...आकर्षण के लिये तो इतना काफी है कि बारह-तेरह साल का हिन्दू लड़का सवारी उठाता है। उसके आगे जो हो। जिससे दुरूद-फातिहा या कुरान से दूर का संबंध न हो, वही लड़का 'हाल' आने पर अरबी की आयतें साफ-साफ पढ़े क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है।''7

मुस्लिम समाज में प्रचलित कथा है कि मकड़ी ने रसूले अकरम की जान बचायी थी तथा गिरगिट ने शत्रु को इशारा किया था। अत: गिरगिट को मारने का सवाब है। उपन्यास में व्यक्त विचार उल्लेखनीय है - ''पैग़म्बर बिचारे दुश्मनों से भागकर एक जंगल में छिपे थे चूँकि उनके प्रवेश से झाड़ियाँ दब बैठ गई थी और उनके देखे जाने का अन्देशा था सो उन्होंने मकड़ी से इल्तजा की कि उनके चारों तरफ जाले पूर कर उन्हें छिपा दे। मकड़ी दोस्त और रहमदिल होती है, उसने वैसा ही किया। जब दुश्मन आये तो भटक गए थे। उन्हें बिल्कुल पता नहीं लग पाता लेकिन पास ही साला एक गिरगिट था जिसने सिर हिला-हिलाकर उस ओर इशारा कर दिया और पैगम्बर गिरफ्तार हो गए। तब से गिरगिट सालों को मारो तो सवाब पहुँचता है।''8

मुस्लिम समाज की आस्थावादी, परम्परावादी एवं रूढ़िवादी मानसिकता की ओर अब्दुल बिस्मिल्लाह, राही मासूम रज़ा, नासिरा शर्मा, असगर वजाहत और शानी का ध्यान गया है वही उनकी जागरूक चेतना ने समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ टूटती आस्था बदलते विश्वास और विघटित होते परम्परावादी मूल्यों को भी देखा है। उन्होंने ईश्वर की सत्ता, उसकी शक्तियों पर सन्देह करने वाले मुसलमानों के भी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने ईश्वर की सत्ता पर शक करने वाले चरित्र को प्रस्तुत किया है। जो परिस्थितियों से विवश होकर कहता है कि - ''मुझे तो अब इसी बात पर शक है कि ख़ुदा है भी या नहीं अगर है तो कहाँ है? या फिर वह भी इन्सानियत को छोड़कर सियासी दाँव-पेंच लड़ाने लगा है उसे भी पावर में रहना है, अपनी सत्ता बनाये रखना है।''9 इसी उपन्यास में ईश्वर के शक्तिहीन हो जाने का उल्लेख किया गया है। उपन्यास का पात्र सुलेमान कहता है कि- ''ख़ुदा बूढ़ा हो रहा, उसके बस की बात नहीं इतने बड़े कारोबार को सँभालना, मेरे ख्याल से उसे अब अपना कोई उत्तराधिकारी घोषित कर देना चाहिए।''10 कुछ लोगों का विश्वास धर्म और आस्था के नाम पर फैली कुरीतियों के कारण धर्म पर से उठ गया है। मंजूर एहतेशाम ने 'दास्तान-ए-लापता' में ऐसे ही विचार को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास का पात्र ज़मीर अहमद खान कहता है कि - ''मैंने धर्म और मज़हब के नाम पर जितना कुछ देखा है, उसमें किसी प्रकार के ईमान आस्था की गुंजाइश नहीं है। सब कपट और धोखाधड़ी लगता है।''11 इस प्रकार ईश्वर के प्रति अनास्थावादी सोच के विकास के कारण कुछ हद तक समाज में विकृतियाँ भी आई हैं। आज मनुष्य स्वयं को सर्वाधिक शक्तिशाली मानकर अनियन्त्रित व्यवहार करने में भी संकोच नहीं कर रहा है।

ईश्वरीय आस्था को रूढ़िवादी अंधविश्वासी सोच से बाहर निकाल पर उस परमसत्ता की असीम शक्ति पर पवित्र भावना से विश्वास रखने वाली सोच भी उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। जहाँ रचनाकार की चेतना ने धर्म को व्यापकता से देखने का प्रयास किया है। 'आधा गाँव' उपन्यास का अशिक्षित पात्र कहता है कि - ''हम तो अनपढ़ गंवार है बाकी हमरे ख्याल में निमाज़ के खातिर पाकिस्तान-आकिस्तान की तनिको ज़रूरत ना है। निमाज़ की ख़ातिर खाली ईमान की ज़रूरत है। ख़ुदाबन्द ताला ने साफ-साफ फरमा दिहिस है कि ऐ मेरे पैगम्बर कह दे ई लोग से कि हम ईमान वालन के साथ है।''12

आज का मनुष्य आवश्यकता से अधिक सांसारिकता में लिप्त होकर संसार को ही सत्य मान बैठा है, परन्तु ऐसे लोग भी है जो ईश्वर को ही सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न मानते हैं। वही दुनिया को चलाने वाला ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरना चाहिए। बदीउज़्जमा ने ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भयभीत न होने की बात अपने उपन्यास 'छाको की वापसी' में व्यक्त की है। जिसका पात्र दृढ़ विश्वास के

साथ कहता है कि - ''कहीं भागकर जाने की ज़रूरत नहीं है। यहीं रहो। पैदा करने वाला और मारने वाला तो ख़ुदा है। उसी के हुक्म से सब जीते मरते हैं। ख़ुदा जो चाहेगा वही होगा। ख़ुदा से डरो। इन्सानों से क्यों डरते हो।''13

इस प्रकार नासिरा शर्मा, मन्जूर एहतेशाम, राही मासूम रज़ा, असगर वज़ाहत, बदीउज़्ज़मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि सभी के उपन्यासों में धार्मिक आस्थावादी दृष्टि समाज में व्याप्त आस्था, विश्वास, रूढ़ियों किंवदन्तियों आदि का उल्लेख किया गया है। आस्था के प्रति विघटित होते मूल्यों की ओर भी इनका ध्यान गया है साथ ही इन्होंने आस्थावादी व्यापक दृष्टिकोण को भी उपन्यास के पात्रों द्वारा स्पष्ट किया है।

कुछ बुद्धिजीवी वर्ग ने भोली-भाली जनता का धर्म के प्रति अटूट एवं समर्पित विश्वास देखकर उसका पूरा लाभ उठाने का प्रयास किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आज़ादी के पचास वर्ष बाद भी हम ऐसी मानसिकता वाले लोगों का उल्लेख किया जा सकता है। धर्म के नाम पर भोली जनता में आक्रोश एवं विद्रोह पैदा कराने वाले राजनीतिक दलों का उद्देश्य मात्र अपना उल्लू साधना होता है। भारत विभाजन ऐसी ही स्वार्थ युक्त संकीर्ण मानसिकता का परिणाम है। सच कहा जाय तो भोली जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इतनी बड़ी घटना के पीछे छुपी रहस्यमयी स्वार्थपरक मानसिकता को देखकर हैरान थी जिसका खामियाजा आज तक उसी सामान्य जनता को ही भोगना पड़ रहा है। आज अपने ही देश में मुसलमानों को जवाबदेह होना पड़ रहा है। स्वतन्त्रता के पचास वर्ष से अधिक हो जाने के बाद भी मुस्लिम समाज हिन्दूवादी शंकालू दृष्टि से बाहर नहीं आ सका है। राही मासूम रज़ा ने न केवल भारत का विभाजन देखा था बल्कि उसके पश्चात् भारतीय मुसलमानों को लेकर उठाये जाने वाले सवालों को और लोगों की प्रतिक्रिया को भी निकट से देखा था। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि - ''इसी का नाम हिन्दू शाइवनिज्म है। क्यों रहोगे? यूँ पूछ रहे हो जैसे मुल्क तुम्हारे बाप का है। ...अगर मैं मुसलमान हूँ तो इससे यह कहाँ साबित होता है कि मैं पाकिस्तानी हूँ और यह कि मैं हिन्दुस्तानी बनकर इस मुल्क में रहने को तैयार नहीं हूँ।''14

राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म के नाम पर चली गई चाल में उन्हें सफलता भी मिली। भारतीय मुसलमान अपने अलग सुरक्षित स्वतंत्र अस्तित्व के सपने बुनने लगा। विभाजन के पश्चात् असुरक्षा का बादल मंडराता देखकर मुसलमानों में पाकिस्तान से जुड़ी आशाएँ पैदा हो गई थी। इस प्रकार की मानसिकता को भी राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में पात्र की विचाराभिव्यक्ति द्वारा चित्रित किया है - ''यह तो आप लोगों को मालूम ही होगा कि आजकल पूरे मुल्क में मुसलमानों की ज़िंदगी और मौत की लड़ाई छिड़ी है। ... हिन्दुस्तानी मुसलमानों को एक ऐसी जगह की ज़रूरत है जहाँ वह इज़्जत से रह सके।''15 'छाको की वापसी' उपन्यास में बदीउज़्जमा ने भी पाकिस्तान के विषय में आशापूर्ण सोच रखने वाले मुसलमानों की मानसिकता का विचारात्मक पक्ष प्रस्तुत किया है - ''सच्चे मुसलमानों के लिए वह एक जीती जागती हकीकत है। वह उनके ख्वाबों की हौसलों की ज़मीन है। वहाँ वह हिन्दुओं के जुल्म से हमेशा-हमेशा के लिए आज़ाद हो सकेंगे।''16

परिस्थितियाँ लोगों पर अपना अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है। जहाँ कुछ लोग पाकिस्तान बनने से प्रसन्न थे, उन्होंने ढ़ेर सारे सपने आँखों में सजो लिये थे। वही बहुत सारे लोग अपने स्वजनों से बिछड़ जाने के कारण दु:खी थे। अपनी ज़मीन से जुड़ी यादें उन्हें देश से अलग नहीं होने दे रही थी। राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में गंगौली के मुसलमानों की अपने गाँव और पूर्वजों की ज़मीन से जुड़ी रागात्मिकता का उल्लेख किया है - ''ए भाई बाप दादा की क़बर हियाँ है। चैक इमामबाड़ा हियाँ है, खेती-बाड़ी हियाँ है, हम कोनो बुरबक हैं कि तोरे पाकिस्तान जिन्दाबाद में फंस जाएँ।''17

भारतीय मुसलमानों की स्थिति को लेकर उत्पन्न आशंकाएँ और विभाजन के पश्चात् उनके अस्तित्व की शून्यता की ओर मंजूर एहतेशाम ने दास्तान-ए-लापता में संकेत किया है। वह लिखते हैं कि - ''यूँ दिल छोटा करने की ज़रूरत नहीं अभी उनकी अच्छी ख़ासी संख्या देश में मौजूद है। बस हुआ यह है कि वह आज की ज़िन्दगी के लिये अप्रासंगिक हो गए हैं।''18

इस्लाम धर्म वैश्विक धरातल पर मानवता का सन्देश देता है। वह भेदभाव को कोई स्थान नहीं देता। विशेषकर मुस्लिम समाज में जातिगत भेदभाव का उल्लेख उसकी पवित्र पुस्तक में कहीं नहीं है। रसूले ख़ुदा का हवाला देते हुए 'आधा गाँव' उपन्यास में इस सत्य को उद्घाटित किया गया है - ''मुसलमान-मुसलमान भाई-भाई होता है इस्लाम ऊँच-नीच नहीं मानता। क्या आंह्जरत (रसूल) ने सलमान फ़ारसी को अपने अहले बैत में नहीं गिनाया था।''19 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने भी इसी प्रकार के विचार को व्यक्त करते हुए इस्लाम में व्यक्त एकत्त्व का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि - ''ख़ुदा, कुरान यह सब मजहब नहीं संस्कृति है। जो हमें हमारे बुज़ुर्गों से मिली है। हमारे रीति-रिवाज हमारी मर्यादाएँ इन पर निर्भर है। इससे आदमी क्यों कर अलग हो सकता है।''20

धर्म के नाम पर मानसिकता को विभाजित करने वाला मनुष्य इस सत्य को भूल गया कि लड़ना बँटना मनुष्य की प्रवृत्ति है वह किसी-न-किसी रूप में आपस में लड़ता रहता है। 'छाको की वापसी' उपन्यास में इस सत्य को उद्घाटित करते हुए बदीउज़्जमा ने लिखा है कि - ''तुम्हें तारीख का कुछ पता नहीं है। हिन्दुस्तान की तारीख में हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे का खून बहाया है। उससे कहीं ज़्यादा खून तो, मुसलमानों की तारीख पर एक सरसरी निगाह डाल लो तो मालूम होगा कि इस्लाम की तारीख आपसी खानाजंगी और खून-ख़राबे की कभी न ख़त्म होने वाली दास्तान है।''21 'सूखा बरगद' उपन्यास में धर्म जाति अथवा किसी अन्य विषयों को आधार बनाकर लड़ने की मानवीय प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर यह विश्वास भी दिखाया गया है कि मानवता कहीं-न-कहीं

जीवित है वह विजयिनी अवश्य होगी। आलोच्य उपन्यास में मंजूर एहतेशाम ने लिखा है कि - "यह आपसी नफ़रत का खेल ज़्यादा दिनों तक चलने वाला नहीं है। तहजीब एक अलग चीज़ है, लेकिन इस मज़हब नामी मिट्टी में अब नए पौधे पकड़ने की ताकत नहीं रही। ...मैं सोचता हूँ कि अगर मैंने ऐसा महसूस किया है तो कम से कम ख़ुद तो इस तरह जियूँ या कम से कम इन ख़्यालों को अपने करीबी लोगों के सामने रखूँ।"22 उपन्यासकार का मानना है कि अपनी सोच और चिन्तन के अनुरूप ही आचार-व्यवहार मनुष्य को करना चाहिए और जहाँ तक मनुष्य के परस्पर संघर्ष की बात है। यह मनुष्य की नियति है, रचनाकार का यह विश्वास बहुत बड़ी शक्ति है कि इस मतभेद, संघर्ष, घृणा आदि का अन्त अवश्य होगा।

मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति उसकी घृणा, दया, ममता, प्रेम, वासना, तर्क, संघर्ष आदि का उल्लेख अनेक दृष्टिकोणों से प्रभावित होते हुए उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अत्यन्त सजगता से किया है, 'कोरजा' उपन्यास में मेहरून्निसा परवेज ने मनुष्य की अनन्त सजगता से किया है। उपर्युक्त उपन्यास में मेहरून्निसा परवेज़ ने मनुष्य की अनन्त इच्छा की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि - "आदमी की यह प्यास कभी ख़त्म नहीं होती।"23 मंजूर एहतेशाम ने 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में मनुष्य की सत्य से पलायन करने वाली प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। प्राय: मनुष्य अपने तर्कपूर्ण वाग्जाल से सत्य को ढक लेने का प्रयास करता है। इसी सत्य को उद्घाटित करते हुए मंजूर एहतेशाम ने लिखा है कि - "तुम मुझसे क्या ख़ुद अपने आप से सच नहीं बोल पाते और ऊपर से इस झूठ पर पर्दा डालने के लिए मोटी-मोटी आलीमाना-फ़ाजिलाना बातें करते हो। जीने के लिये सिर्फ खुराफाती ज़ेहन ही नहीं जीवट चाहिए होता है। ...इस जिस्म की हक़ीकत क्या अगर इसे बरतने का शऊर नहीं। ...दुनिया जिसके भी चलाये चल रही है। उसमें कुछ दमखम है। तुम्हारी सोच जैसा कोई लोंदा हरगिज नहीं है।"24

जीवन में मिलने वाली सफलता यश, धन, मनुष्य को अहंकारी बना देता है। इतना ही नहीं इसका ताप इतना प्रखर होता है कि मनुष्य में से मानवता की नमीं नष्ट होने लगती है। उसकी संवेदनात्मक आर्द्रता शुष्क हो जाती है। वह स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित हो जाता है। मेहरून्निसा परवेज को मनुष्य के स्वभाव के इस सत्य का आभास है। अत: वह मानवता संवेदनशीलता और अपनत्व का मोल देखकर सफलता कदापि नहीं चाहती। इसी सत्य को उन्होंने 'कोरजा' उपन्यास में कल्पित पात्र के माध्यम से व्यक्त किया है। जो कहता है कि - "यदि तरक़्क़ी के नाम पर दु:ख पीड़ा और ईर्ष्या ही मिले तो मैं कभी नहीं चाहूँगा कि मेरा बस्तर तरक्की करे। जैसा है वैसा ही रहने दो। थोड़े से मुट्ठी भर सुखों पर खुश हो लेने वाले लोगों को क्यों दिवालिया बनाना चाहती हो? क्यों उन्हें बेईमानी स्वार्थ दिवालियेपन और ख़ुदग़र्जी के नरक में झोंकना चाहती हो। जैसे हैं, वैसे ही भले हैं वे लोग।"25 नासिरा शर्मा के यहाँ भी मानवता के विरूद्ध किसी भी प्रकार की व्यवस्था को लेकर पूर्णत: अस्वीकृति दिखाई पड़ती है। वह 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास में लिखती हैं कि - "व्यवस्था इन्सानियत की दुश्मन हो उसका मेरा कोई संबंध नहीं है।"26

मानव सभ्यता का पूरा इतिहास संघर्षों का इतिहास है। मनुष्य ने केवल समाज, व्यवस्था और परिस्थितियों के मध्य संघर्षरत है अपितु उसका एक संघर्ष अपने आप से भी चलता रहता है जिससे वह टूटता-घुटता रहता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस संघर्ष की ओर संकेत करते हुए समरशेष उपन्यास में लिखा है कि - "संघर्ष केवल वही नहीं होता जो चन्द ख़ास और चन्द आम लोगों के बीच होता है। संघर्ष किसी आदमी का जीवित रहना भी है। जब वह ख़ुद से ही लड़ता है और ख़ुद से निपटता है ख़ुद से हारता है। ख़ुद से ही जीवित है। इस तरह आदमी एक इतिहास है।"27

जीवन में मिलने वाली असफ़लताएँ मनुष्य को निराश कर देती है। ऐसे में उसे संवेदना, प्रेम एवं सहयोग की आवश्यकता होती है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में मन्जूर एहतेशाम ने परीक्षा परिणाम में असफल हुए पुत्र को पिता द्वारा दी जाने वाली सांत्वना का उल्लेख किया है - "अगर यूँ हार गए तो कैसे काम चलेगा। अच्छे-अच्छे विद्यार्थियों के साथ इस तरह इत्तेफ़ाक़ हो जाते हैं। कभी-कभी सब कुछ जानते हुए भी लोगों के पर्चे बिगड़ जाते हैं। नहीं दे पाता साथ भई, दिमाग ही तो है। ...जब गौर करोगे तब ख़ुद ही अपने किये में कमज़ोरियाँ नज़र आएगी। दूसरों को इल्जाम देने के बजाय अपनी कमज़ोरियों को दूर करो और फिर देखो अगले साल।"28 प्राय: मनुष्य अपनी असफलता के लिये परिस्थितियों को या अन्य चीज़ों को दोषी ठहराता है। उपन्यासकार मंजूर एहतेशाम ने उपरोक्त कथन में इस मानवीय प्रवृत्ति को भी ध्यान में रखा है।

मनुष्य की विभाजित होने की मानसिकता, आशा, निराशा, संघर्ष, द्वन्द्व, असंतोष तथा परिस्थितियों के साथ उसमें आने वाले परिवर्तन आदि मानवीय प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मेहरून्निसा परवेज़, बदीउज़्ज़मा, राही मासूम रज़ा, असगर वज़ाहत आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अधिकांशत: नारी त्याग और समर्पण की साक्षात् मूर्ति है। वह समस्त यातनाओं को सहते हुए भी अपने प्रिय के प्रति समर्पित भाव रखती है। नासिरा शर्मा ने नारी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए अपने नारी हृदय को प्रभावित करने वाले विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है- "इन औरतों की बातें समझ नहीं आती कि जुल्म सहेगी मगर ज़ालिम को ज़ालिम नहीं कहेंगी, जो मूर्ति इनके मन में किसी की बन जाती है वह ज़िन्दगी भर बनी रहती है।"29

स्त्री-पुरुष संबंधों को ध्यान में रखते हुए उनके बीच के मित्रतापूर्ण व्यवहार और नारी की आत्मगत् अवधारणा की ओर उपन्यासकारों का ध्यान गया है। विशेषकर नारी उपन्यास लेखिकाओं ने स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित अपनी अनुभूति को अत्यन्त स्वाभाविकतापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है।

अधिकांशत: नारी की आत्मा पवित्र होती है वह आत्मा से संबंध को जोड़ती है शरीर आधार मात्र होता है। शरीर संसार से जुड़ा है अत: वह सांसारिक मलीनता से दूषित हो जाता है परन्तु आत्मा को स्पर्श कर अपवित्र कर पाना कठिन है। नासिरा शर्मा ने 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास में आत्मा से जुड़े भाव को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि - "मेरी आत्मा को तुम दाग़दार नहीं कर पाये, यह शरीर तो पहले से तुम लोगों की दी गई यातनाओं की सनद बना रहा है, नश्वर है मगर आत्मा नहीं, आत्मा का स्पर्श तुम कर पाये ऐसा भ्रम केवल पाल सकते हो।"30

'कोरजा' उपन्यास में व्यक्त स्त्री-पुरुष संबंध को अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया गया है। मेहरून्निसा परवेज़ ने इस संबंध को मंजूर एहतेशाम और नासिरा शर्मा से अलग दृष्टि रखते हुए अभिव्यक्ति प्रदान की है। मेहरून्निसा परवेज की दृष्टि में स्त्री-पुरुष संबंधों को शरीर की सीमा से ऊपर उठाकर देखा है, जो अटूट है, और आत्मा के अमरत्व से जुड़ा हुआ है - "दोस्ती किसी मोड़ पर आकर टूट भी सकती है, पर दोस्ती से बढ़कर होती है एक दूसरे को समझने की बात। तमाम नाराज़गियों के बावजूद अखण्डित जुड़े रहने की बात। ...खोने का अन्देशा ही नहीं उठता। हम भावुकता की उम्र पार कर चुके हैं। जहाँ पहले हम तड़क सकते थे। छूट सकते हैं, सोचना भी बेवकूफी होगी।"31

आत्मा की पवित्रता और पुरुष द्वारा किया जाने वाला शोषण, स्त्री का पुरुष मित्र को, पुरुष के रूप में समझने का प्रयास और ऐसा संबंध जो टूटने छूटने की सीमा से ऊपर है, अटूट है। स्त्री-पुरुष संबंध पर आधारित तीन मान्यताएँ नासिरा शर्मा, मन्जूर एहतेशाम और मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में भिन्न-भिन्न ढंग से उभरकर सामने आई है। तीनों का दृष्टिकोण मौलिक है, कहीं यथार्थवादी दृष्टि है, तो कहीं व्यक्तिगत आदर्शवादी सोच शामिल है।

धर्म के नाम पर जन्मी विसंगतियों, राजनैतिक, सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों को मुस्लिम उपन्यासकारों ने पात्रों के माध्यम से अत्यन्त सजीवता से प्रस्तुत किया है। इन पात्रों के माध्यम से समाज में चल रही विचारधारा का स्वरूप अत्यन्त यथार्थपरक ढंग से उभरकर सामने आता है। इससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि रचनाकार उसका चिन्तन एवं विचार कितनी गहराई से समाज से जुड़ा है। समाज के साधारण से साधारण व्यक्ति का प्रतिनिधित्व रचनाकार अपने दिव्य चिन्तन द्वारा जन्में यथार्थपरक विचारों से करता है।

000

सन्दर्भ-

1 राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 114, 2 नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समुन्दर, अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ 243, 3 असगर वज़ाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 92, 4 अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 67, 5 वही, पृ 66, 6 आधा गाँव, पृ 294, 7 शानी, काला जल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 213, 8 वही, पृ 139, 9 सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ 203, 10 वही, पृ 203, 11 मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृ 139, 12 आधा गाँव, पृ 247, 13 बदीउज़्जमा, छाको की वापसी, 18, 14 राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 64-101, 15 आधा गाँव, पृ, 16 छाको की वापसी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 112, 17 आधा गाँव, पृ, 18 दास्तान-ए-लापता, पृ 185, 19 आधा गाँव, पृ 37, 20 सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ 205, 21 छाको की वापसी, पृ 78, 22 मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 71, 23 मेहरून्निसा परवेज़, कोरजा, पृ 108 24 दास्तान-ए-लापता, पृ 139-40, 25 कोरजा, पृ 108, 26 सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ 272, 27 अब्दुल बिस्मिल्लाह, समरशेष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 66, 28 सूखा बरगद, पृ 112, 29 सात नदियाँ एक समुन्दर, पृ 203, 30 वही, पृ 265, 31 कोरजा, पृ 87

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

काला सोना

लेखक : रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

रेनू यादव की नचनिया, काला सोना, वसुधा, मुखाग्नि, छोछक, कोपभवन, टोनहिन, अमरपाली, चऊकवँ राँड़, डर, खुखड़ी, मुँहझौसी, इन बारह कहानियों का संकलन है काला सोना। वरिष्ठ साहित्यकार नरेंद्र पुंडरिक इन कहानियों के बारे में भूमिका में लिखते हैं- भाषा को ताकत शब्दों के चयन से मिलती है। रेनू यादव को भाषा की कहन उनके परिवेश से मिली है, लोक से मिली है। चुक्कू-मुक्कू, रोपनी, सोहनी, कटिया-दँवरी, पहटा, गुर्रही आदि इस तरह के शब्द कहानियों में प्राण-कण की तरह बसे हैं जो इनकी कहानियों को लम्बी यात्रा की कहानियाँ बनाते हैं। इन कहानियों में स्त्री के प्रेम का रूप पारम्परिक और उसांसी प्रेम से अलग है। स्त्री के जीवन्त प्रेम का रूप जीवन के द्वन्दों से लिथड़ा है, जिसे वह जीवन के द्वन्दों के साथ जीती है। आज जहाँ आदमी के संघर्षों का प्रतिफल पूँजी के तंत्र में उलझ कर तेजी से विलुप्त होता जा रहा है, ऐसे समय में ये कहानियाँ समकालीन कथा- जगत् में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण सार्थक हस्तक्षेप है।

000

शोध आलेख

टॉरनेडो में किशोर बालिका का मनोविश्लेषण

शोध : रेनू यादव

रेनू यादव
फेकल्टी असोसिएटभारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर,
ग्रेटर नोएडा – 201 312 (उप्र)
ईमेल- renuyadav0584@gmail.com

उम्र की प्रत्येक अवस्था एक सफ़र है। परन्तु उम्र के संक्रमण काल का समय अत्यंत जटिल होता है जिसे तारूण्य काल या किशोरवस्था कहते हैं। यह बचपन से वयस्क होने के बीच व्यक्ति के संक्रमण की अवस्था है। बारह से लेकर अट्ठारह वर्ष की उम्र तक जितनी तीव्र गति से शारीरिक विकास होता है उतनी ही तीव्र गति से मानसिक परिपक्वता भी बढ़ती है। इस उम्र में संवेगात्मक, सामाजिक संज्ञानात्मक एवं नैतिक परिवर्तन मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के क्षेत्र हैं। इसी उम्र में किशोर अमूर्त सोच और निगमनात्मक तर्क की ओर बढ़ता है, उनमें उत्साह, नेतृत्व, सहानुभूति, सद्भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है। जिससे उनकी आदतें, रुचियाँ आदि प्रभावित और परिवर्तित होती हैं। इसी उम्र की बालिका 'क्रिस्टी' की कहानी है – टॉरनेडो। टॉरनेडो उष्णकटिबंधीय चक्रवात है, जिसका प्रमुख क्षेत्र कैरेबियन सागर और अमेरिकी क्षेत्र है। यह अत्यंत प्रलयकारी होता है। लेखिका सुधा ओम ढींगरा ने 'टॉरनेडो' को प्रतीक रूप में लिया है। दरअसल यह चक्रवात क्रिस्टी के जीवन में आया है, जिससे वह जूझने की हर संभव कोशिश करती है।

अमेरिका की स्वतंत्र विचारों वाली महिला जैनेफर की बेटी 'क्रिस्टी' उम्र के उस पड़ाव पर है जिस उम्र में सामान्यत: सामाजिक नियमों के प्रति समझ, नैतिक-अनैतिक सिद्धांतों की समझ तथा अपनी कल्पनाएँ एवं उपकल्पनाओं की समझ विकसित हो जाती है। प्राय: इस उम्र में अपने नियम सामाजिक नियमों को तर्क पर रखते हुए पूर्वाग्रह पर आधारित होते हैं कि वे जो सोच-समझ रहे हैं वही सही है। उनका अमूर्त चिंतन मूर्त होता हुआ प्रतीत होता है किंतु एक वयस्क एवं परिपक्व व्यक्ति के लिए वह मूर्त नहीं रहता। इसी स्तर पर विचारों में टकराहट उत्पन्न होती है कि वे स्वयं को बड़े समझते हैं किंतु इतने भी बड़े नहीं होते हैं कि सब समझ सकें। क्रिस्टी और उसकी माँ जैनेफर दोनों साथ में होते हुए भी दोनों का यथार्थ अलग-अलग है और दोनों ही एक-दूसरे के यथार्थ की भावभूमि पर नहीं उतरना चाहतें। जैनेफर की इच्छाओं एवं महत्त्वाकांक्षाओं को समझने में क्रिस्टी असमर्थ है तथा जैनेफर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में अत्यधिक लिप्त होने के कारण क्रिस्टी के कोमल मन में चल रहे टॉरनेडो को पहचान नहीं पाती।

क्रिस्टी अपने आसपास के वातावरण को तर्क एवं विश्लेषण की दृष्टि से देखती है। क्रिस्टी के पिता के स्वर्गवास के बाद जैनेफर का ब्वॉयफ्रेंड बदलते रहना, अपने जीवन में व्यस्त रहना तथा क्रिस्टी के ऊपर ध्यान न देना उसे अत्यंत अकेला कर देता है। दस वर्ष की अवस्था में क्रिस्टी यह सब झेल नहीं पाती। वह अपनी सहेली सोनल की माँ वंदना से जैनेफर की तुलना करने लगती है। सोनल के पिता के स्वर्गवास के बाद वंदना सोनल पर पूरी तरह से ध्यान देती है। वंदना का कोई ब्वॉयफ्रेंड नहीं होता है, जो कि जैनेफर को 'एबनॉर्मल' लगता है। यह बात क्रिस्टी के मन में बैठ जाती है कि एबनॉर्मल लोगों के कोई ब्वॉयफ्रेंड नहीं होते और वे अपने बच्चों पर ध्यान देते हैं तो वह जीसस से प्रार्थना करने लगती है कि जैनेफर भी एबनार्मल हो जाए। क्रिस्टी का यह प्रार्थना करना उसकी बालपन की मासूमियत एवं सहज प्रवृत्ति को दर्शाता है। उसे प्रत्येक स्तर पर जैनेफर से अधिक वंदना बेहतर नज़र आती है। प्रेम और समय की लिए तरसती क्रिस्टी को स्कूल के बाद डे-केयर में रहना पड़ता है जबकि सोनल को स्कूल से लेने के लिए वंदना आती है, क्रिस्टी का लंच बॉक्स तैयार करने के लिए जैनेफर के पास समय नहीं होता जबकि हर रोज़ वंदना सोनल को लंच बॉक्स तैयार करके देती है। वंदना मात्र सोनल से ही नहीं बल्कि क्रिस्टी से भी स्नेह रखती है, यही कारण है कि वंदना के प्रेम ने उसे अपने पास खींच लिया और वह उसके साथ घर आने लगी। वंदना का स्नेह और साहचर्य क्रिस्टी के मन के भटकाव को स्थिर रखता है और सही-ग़लत में से सही चयन के प्रति समझ विकसित करता है।

क्रिस्टी अपनी उम्र के हिसाब से अधिक समझदार एवं तर्कशक्ति वाली बालिका है। किशोरावस्था में पदार्पण के बाद उसका परिचय जैनेफर के ब्वॉयफ्रेंड केलब के अभद्र व्यवहार से होता है, तब वह अपनी माँ से तर्क भी करती है किंतु जैनेफर ममता और काया के बीच उलझी

काया को चुनती है। क्रिस्टी समझदारी का परिचय देते हुए पढ़ाई के साथ-साथ बेबी सिटिंग का भी कार्य करती है और अट्ठारह की उम्र तक पहुँचने का इंतज़ार करती है ताकि वह उसके बाद किसी छात्रावास में रहने चली जाएगी। वह केलब के अभद्र व्यवहार से तपते हुए अपने मन की बात वंदना को बताती है तब वंदना उसे भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है जबकि जैनेफर उसे भावनात्मक सुरक्षा नहीं प्रदान कर पाती।

इस उम्र में भावनात्मक सुरक्षा की अत्यधिक आवश्यकता होती है तथा माता-पिता की उनके जीवन में स्वतंत्रता और हस्तक्षेप की संतुलित आवश्यकता होती है, जो कि जैनेफर खो रही थी और वंदना उसे दे रही थी। भारतीय और अमेरिकी संस्कृति के बीच टकराहट का परिचय देते हुए लेखिका सुधा ओम ढींगरा जैनेफर और वंदना के बीच अंतर को दर्शाते हुए उनके बच्चों क्रिस्टी एवं सोनल पर पड़ने वाले प्रभावों को ख़ूबसूरती से दर्शाती हैं। अमेरिका में जन्मी क्रिस्टी को वंदना से संस्कार मिलने के कारण वह कदम-कदम पर स्वयं को सँभाल लेती हैं। वंदना इस बात को बख़ूबी समझती है कि किशोरवस्था में ही एक ओर शारीरिक परिपक्वता का विकास होता है तो दूसरी ओर उनमें अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता बढ़ने लगती है। वे आत्मकेन्द्रित होने लगते हैं कि उन्हें कौन किस नज़रिए से देख रहा है। यदि इस समय परिवार, समाज एवं पर्यावरणीय कारकों से भावनात्मक सुरक्षा प्राप्त हो जाती है, तो किशोर को सही दिशा मिल जाती है अन्यथा उनमें भटकाव उत्पन्न हो जाता है। इसीलिए वंदना सोनल और क्रिस्टी को "नो डेटिंग इन हाई स्कूल" की शिक्षा देने के साथ-साथ क्लास में अच्छे स्कोर ले आने पर बल देती है ताकि आगे अच्छे कॉलेज में दाखिला मिल जाए। लेकिन जैसे ही वह जय पटेल द्वारा सोनल को डेट पर ले जाने के आग्रह की ख़बर सुनती है, वह डर जाती है। उसे पता है कि इस उम्र में यदि माता-पिता अपने बच्चों को नियंत्रित करने अर्थात् स्वतंत्रता का दमन कर उन्हें उच्च आदर्शों पर चलने का दबाव बनाते हैं तो वे विद्रोही हो सकते हैं, इसी उम्र में दोस्त, प्रेम, प्रगति, धन, पारिवारिक जीवन उनके उलझाव का कारक बनते हैं क्योंकि उनके अनुसार वे सब कुछ सही तरीके से समझ रहे हैं लेकिन लोग उन्हें ठीक से समझ नहीं पा रहें। अपने आपको सही साबित करने के लिए तथा नए-नए अनुभवों को हासिल करने के लिए वे जोखिम भरे कदम उठाने लगते हैं। इसी उम्र में उनमें नैतिक मूल्यों का भी विकास होता है, जिससे वे बार-बार तर्क करते हैं और अपने तर्क पर दृढ़ भी रहना चाहते हैं।

क्रिस्टी विद्रोही तो होती है लेकिन नैतिक एवं अनैतिक मूल्यों में टकराहट के कारण। उसमें वंदना के दिए संस्कारों के कारण नैतिकता की समझ है तथा केलब के दुर्व्यवहार के कारण वह जानती है कि केलब उसकी माँ के लिए सही व्यक्ति नहीं है। वह जैनेफर पर केलब को घर न ले आने का दबाव बनाती है किंतु क्रिस्टी के अट्ठारह वर्ष के होते ही जैनेफर केलब को घर ले आती है, जिससे क्रिस्टी निराश हो जाती है। किशोरावस्था में बार-बार बच्चों के ऊपर मानसिक दबाव पड़ने से वे या तो भग्नाशा का शिकार हो सकते हैं अथवा विद्रोही। बचपन में होने वाली दर्दनाक अवांछित घटनाओं, पारिवारिक समस्याओं, पर्यावरणीय समस्याओं, सामाजिक समस्याओं और अनुवांशिक समस्याओं आदि के कारण वे चिंता, अवसाद, भग्नाशा, स्क्रिज़ोफ्रेनिया आदि के शिकार हो सकते हैं। हालाँकि क्रिस्टी वंदना के संसर्ग में आकर अपने मनोभावों पर नियंत्रण रखने की कोशिश करती है, किंतु जैनेफर का विवाह केलब से होने के पश्चात् वह स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाती और घर छोड़ कर चली जाती है।

यह ध्यातव्य है कि सभी किशोर एक-दूसरे से अलग होते हैं, इसी समय उनका समाजीकरण होता है। उनमें परिवार के बड़े लोगों का अनुकरण, दोस्तों से अभिरुचियों का समन्वय, कुछ महान् लोग जिन्हें वह रोलमॉडल मानता है, उनकी तरह बनने की चाहत, जिन दोस्तों को वह सुपीरियर समझता है और ख़ुद को हीन, उन्हीं दोस्तों में हीनताबोध भरने की इच्छा, समाज के कार्य, आदर्श एवं प्रतिमान से अपने अपने दृष्टिकोणों को मिलाने की चाहत की प्रधानता होती है। इसलिए कुछ किशोर बड़ी से बड़ी समस्या को झेलकर समझदार एवं ज़िम्मेदार बन जाते हैं किंतु कुछ किशोर समस्याओं को झेल पाने में असमर्थ हो जाते हैं और लड़ने की बजाय पलायन करना अधिक उचित समझते हैं। क्रिस्टी अपनी क्षमता के अनुसार समस्याओं पर विजय पाने की पूरी कोशिश करती है किंतु जैनेफर का सहयोग न मिलने के कारण वह पलायन करने के लिए विवश हो जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि अपना परिवार साथ देता है तब बच्चे किसी भी समस्या से लड़ सकते हैं किंतु अपने परिवार के सहयोग के बिना उनकी स्थिति क्रिस्टी जैसी हो सकती है। इस उम्र में जैनेफर से उसे अतिरिक्त देख-रेख की नहीं बल्कि सामान्यत: ईमानदार देख-रेख की आवश्यकता थी किंतु जैनेफर का प्राधिकरत्व एवं ख़राब संपर्क, संप्रेषण की कमी, गैर अनुकूल वातावरण उसे कमज़ोर बना देता है।

लेखिका सुधा ओम ढींगरा इस कहानी में किशोर की जटिल मानसिकता एवं उससे जुड़ी गंभीर समस्याओं को सामने ले आती हैं, चाहे वह समस्या माँ के उच्छृंखल व्यवहार के कारण हो अथवा बाल शोषण के कारण, चाहे भारतीय एवं पाश्चात्य मूल्यों में टकराहट के कारण हो अथवा नैतिक-अनैतिक मूल्यों के कारण हो। ये सभी कारण अगली पीढ़ी को दिशाहीन कर देने के कारक बनते हैं। क्रिस्टी का पलायन इस बात का प्रमाण है कि उसका पलायन भारतीय एवं पाश्चात्य मूल्यों में टकराहट के कारण नहीं बल्कि उसकी माँ जैनेफर के ख़राब संपर्क, संप्रेषण की कमी, अविश्वास एवं व्यावहारिक विचलन के कारण होता है। लेखिका माँ-बाप को बच्चों के प्रति अपने ज़िम्मेदारियों के निर्वहन के लिए सचेत करती हैं कि किशोरावस्था के संक्रमण काल में प्रत्येक किशोर में अलग-अलग कारणों से टॉरनेडो चल रहा होता है, जिस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

000

शोध आलेख

दिलीप तेतरवे के व्यंग्य आलेखों में आम और ख़ास आदमी

शोध : डॉ. नूरजहाँ परवीन

दिलीप तेतरवे कबीरी परम्परा के निर्भीक व्यंग्यकार माने जाते हैं। वे आम आदमी का मनोबल बढ़ाने वाले नूतन चेतना से युक्त व्यंग्य आलेख लिखते हैं। वे अपने व्यंग्य से उनका मनोबल तोड़ते हैं, उनके मुखौटे उतारते हैं, जो समाज में विसंगति, विद्रूपताओं और अन्याय के कारक तत्त्व हैं। उनका व्यंग्य लक्ष्य बहुत स्पष्ट होता है, उनके व्यंग्यभाषा में मारक शक्ति है और उसमें इतना तेज़ बहाव होता है, जिससे पत्थर जैसे व्यंग्यलक्ष्य को वे बालू में परिवर्तित कर देते हैं! वे कभी व्यंग्य लक्ष्य का सीधे नाम लेकर और कभी प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्यलक्ष्य का मनोबल ध्वस्त करते हुए नज़र आते हैं। व्यंग्यलक्ष्य पर व्यंग्य वार करने के लिए उन्होंने अनेक बार मिथ का प्रयोग किया है या अपने व्यंग्य को कथाओं और किस्सों में पिरोया है- वे एक बेहतर व्यंग्य किस्सागो हैं। अत: उनके व्यंग्य किस्सों की भरमार होती है। उनके व्यंग्य में भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता होती है। उनका लेखन कबीर, नागार्जुन या फणीश्वरनाथ रेणु की तरह जनपक्षीय है। उनके व्यंग्य के तेवर की धमक उनके समकालीन वे व्यंग्यकार भी महसूस करते हैं जो व्यंग्यभाषा को अश्लील कर, गालियों से भर कर, और सत्ता के पक्ष में व्यंग्य लिखते हैं। दिलीप तेतरवे का मत है कि व्यंग्य ही नहीं, आम हिन्दी साहित्य को भी जनपक्षीय ही होना चाहिए। साहित्य जनसरोकार से उत्पन्न होता है और सदैव जनहित में होता है। किन्तु उनका विचार है कि आज व्यंग्य लिखना आसान नहीं है- "आज के व्यंग्य के लक्ष्य बड़े जटिल हैं, बड़े ताकतवर हैं, बड़े शातिर हैं, और क्रूर हैं। वे किसी भी विपरीत आवाज़ को सहन नहीं करते, बल्कि उस आवाज़ को आम आदमी की आवाज़ न मान कर आवाज़ को किसी वाद या राजनीतिक वाद से जोड़ देते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में एक व्यंग्यकार के लिए 21 वीं शताब्दी में लिखने के अनेक विषय हैं, अनेक दुखी जन हैं, अनेकानेक विसंगतियाँ फैली हुई हैं, समाज के हर स्तर पर व्यंग्य के अनेकानेक कारक तत्त्व मौजूद हैं, जिन पर व्यंग्य की गली हुई गरम लाह डाल कर तीखे-चुभते, वक्र शब्द से निर्मित मुहर लगाने की ज़रूरत है।"

यह सत्य है कि आज जो समाज में विसंगति पैदा कर रहे हैं वे आमतौर से सक्षम या ताकतवर लोग हैं- इनकी राजनीतिक और प्रशासनिक पहुँच बहुत ऊपर तक होती है। ये हिंसा करने में ज़रा भी नहीं घबराते हैं।

इस लेख में दिलीप तेतरवे के विभिन्न व्यंग्य आलेखों की यात्रा कर यह देखने की चेष्टा है कि उन्होंने कैसे-कैसे लोगों को अपने व्यंग्य आलेखों का लक्ष्य बनाया है और कैसे-कैसे वंचितों का पक्ष लिया है, या कैसे लोगों को उन्होंने अपने व्यंग्य आलेखों में उनके अंतर्मन की छटपटाहट को शब्द दिया है।

दिलीप तेतरवे के व्यंग्य आलेख 'गाँधीवादी किशन और छलिया माधव' दो विचित्र व्यक्तित्व हैं- किशन जी और उनके लंगोटिया यार माधव जी। दोनों का नाम तो कृष्ण कन्हैया से जुड़ा है लेकिन दोनों में कृष्ण का एक भी गुण नहीं है। किशन जी अपने को गाँधीवादी कहते थे और पेशे से ठेकेदार थे, तो माधव जी रसिक व्यक्तित्व थे और किशन जी के कटु आलोचक। पहले माधव जी का व्यक्तित्त्व द्रष्टव्य है- "वे बहुत सेलेक्टिव मददगार थे। पड़ोस की लड़कियों को, मदद प्रदान करने की उत्कट इच्छा के साथ वे अपने जाल जैसे हाथ फ़ैलाने में कभी हिचकते नहीं थे...मर्दों में उनका इंटरेस्ट नहीं था..उनके पास जीने का एक ठोस प्रेक्टिकल सिद्धांत था, यावात् जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत। ऋण लेना ही उनका व्यवसाय था। ऋण उनके लिए कमाई था...।"

इतना ही नहीं माधव उन्हीं से ऋण लिया करते थे, जिनकी कमज़ोरियों से वाकिफ हुआ करते थे। अगर उस ऋणदाता ने ऋण वापसी की बात की तो उससे साफ कह देते थे- "अरे सुन्दर लाल चमन, ज़्यादा शेर न बनो, तुम मेरे साथ कोलकाता में क्या-क्या गुल खिला कर आए हो उसका वीडियो भाभी जी को पहले सुना दूँगा, और ज़रूरत पड़ी तो दिखला भी दूँगा। साथ ही, तुम्हारा पैसा जितने दिन रखूँगा उस पर तुमको चौदह परसेंट सर्विस चार्ज माइनस कर लौटाऊँगा।"

डॉ. नूरजहाँ परवीन
ऐश्वर्या अपार्टमेंट्स, ब्लॉक-ए, फोर्थ फ्लोर, टी. टी. रोड, हिंदपिरी, मंटू चौक
राँची, झारखंड 834001
मोबाइल-7488014592

दूसरी ओर, किशन लाल भी दोहरी-तिहरी व्यक्तित्व के स्वामी थे- वे अपने को जन्मजात गाँधीवादी घोषित करते थे, वे मुनाफाखोर ठेकेदार थे और ज़रूरत पड़ने पर छुरा भी निकाल सकते थे। अक्सर माधव जी उनको टायर चोर कहा करते थे और एक दिन किशन जी इस टिप्पणी को बर्दाश्त नहीं कर पाए, माधव को अंतिम चेतावनी दी, लेकिन जब माधव ने उनकी चेतावनी अनसुनी कर दी तो वे अपने तीसरे अवतार में आ गए-

'ठहर एक मिनट, मैं घर के अंदर से आता हूँ।' यह आकर आकार किशन लाल अपने घर के अंदर गए और रामपुरी छुरा लेकर माधव कि ओर लपके और ज़ोर से चीखे, 'तू मेरे जैसे पक्के गाँधीवादी को कायर समझता है क्या...यह रामपुरी छुरा!' व्यंग्य यात्रा, अक्टूबर-दिसंबर, 2015, पृष्ठ-82

और, आज ऐसे गाँधीवादी गली-कूचों से लेकर मंत्री-पद पर भी आसीन हैं। एक ओर गाँधी को अपनी राजनीति में प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर, वे हिंसा करने के लिए जनता से नारे लगवाते हैं, किसी अकेले को सड़क पर घेर कर दस लोग मार देते हैं और उन सब को ज़मानत मिल जाने पर मंत्री जी उनको माला पहना कर स्वागत करते हैं! ऐसे गाँधीवादी आज आम हो गए हैं!

'सत्यव्रत' उर्फ किस्सागो दिलीप तेतरवे के व्यंग्य का एक पुराना और प्रसिद्ध चरित्र है, जिसे उन्होंने अनेक व्यंग्य में वाचक के रूप में प्रस्तुत किया है। वह बर्बरीक की तरह अपने परिवेश को पढ़ता है और उसका व्यंग्यात्मक विवरण और चुटीली टिप्पणी करता है। देखें तेतरवे का व्यंग्य आलेख 'सत्यव्रत दिल्ली में' – इस आलेख में पहले वह ख़ास और फिर आम लोगों की चर्चा करता है- "...आपको दिल्ली के कुछ सच्चे किस्से ही सुनाऊँगा, बस दस प्रतिशत मेरी फीस, महानगर का खर्च देख कर बढ़ा देना! जो आप दोगे उसे अकेला भी नहीं खाऊँगा। एक-दो को खिला कर ही खाऊँगा। अकेला खाने वाले सुपर क्लास वाले जेट-यात्री ग्रुप का नेता, उद्योगपति या काला धनधारी मैं नहीं हूँ। पैदल चलने वाला हूँ। कैटल क्लास वाला पैदल यात्री! आम आदमी भी इसी क्लास का होता है, कुछ इसे स्वीकार करते हैं, कुछ नहीं करते, वे दुःख में रहते हैं।"

आज नेताओं, पूँजीपतियों आदि का अहंकार रावण के अहंकार को मात करता है। नेताओं को लगता है कि वे जिस कुर्सी पर बैठे हैं, उसके अधिकार का दुरुपयोग ही उनका अधिकार है! इसी लेख का एक चरित्र है- राजनीति प्रसाद। उसका परिचय भी सत्यव्रत देता है, विवरणात्मक व्यंग्य में- "अब क्या बताएँ, दिल्ली आकर हजारों नेताओं के बीच एक चमचमाते नेता को देखा तो देखता ही रह गया। नाम राजनीति प्रसाद जी- रंग गोरा, दिल कला। कपड़ा उच्चतम क्वालिटी का, विचार घटियातम, सच से परहेज, झूठ से नाता, आँखों में आँसू, हृदय में घृणा का सैलाब, मुँह में राम, हाथ छुरा! दूर से ही सबको प्रभावित कर जाते हैं। राजनीति प्रसाद जी।"

राजनीति प्रसाद अपनी ज़िम्मेदारी को छोड़ कर बहुत सारा काम करते हैं और ऐसे काम करते हुए व्यंग्य का बहुत सा कच्चा माल तैयार कर देते हैं- "व्यंग्य के बीज, व्यंग्य की जड़ें, व्यंग्य का ताना, व्यंग्य की डालियाँ, व्यंग्य के पत्ते, व्यंग्य की कलियाँ, व्यंग्य के फूल यानी व्यंग्य का वह विशाल पेड़, जिस पर व्यंग्य का हर कच्चा माल प्रचुरता में फलता-फूलता है। उनका बने हाइब्रिड पेड़ है और नूतन स्वस्थ पेड़ अपने आप में व्यंग्य का प्रतिरूप है।"

"साहब, राजनीति प्रसाद जी अपने लिए विशेष रूप से तैयार नव पुष्पक-विमान से विदेशों का ताबड़तोड़ दौरा कर रहे हैं ताकि उनके देश का व्यंग्य उत्पाद विदेशों में बिक जाए। बिचौलिए भी उन्होंने तय कर दिए हैं, अपने देश के अरबपति नानसेन और हर देश के लिए भीषण कमीशन देने वाले एजेंट भी तय कर दिए गए हैं, उनका सद्विचार है कि उत्पादित व्यंग्य के कच्चे माल का निर्यात बड़े पैमाने कर देश के निर्यात-आयात के बढ़ते घाटे से देश को बचा कर निकाल लिया जाए। लेकिन अब अंतिम आशा तो व्यंग्य के तेज़ी से बढ़ते कच्चे माल के स्टॉक के निर्यात पर ही है।"

000

नई पुस्तक

(उपन्यास)

तलाश ख़त्म हुई

लेखक : प्रमोद देवगिरिकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अपराध तथा अपराध की छानबीन पर आधारित प्रमोद देवगिरिकर का उपन्यास तलाश ख़त्म हुई शिवना प्रकाशन से हाल में ही प्रकाशित होकर आया है। लीक से हटकर कुछ करना प्रमोद देवगिरिकर का जूनून है। इंजीनियरिंग से आर्मी, वहाँ से कॉर्पोरेट विश्व, फिर अध्यापन और अब लेखन। और यहाँ भी पहली पुस्तक सेल्फ-हेल्प पर, दूसरी अर्ध-फिक्शन और तीसरी फिक्शन पर लिखी। यह पुस्तक भी फिक्शन है पर इस बार हिंदी में। यह पुस्तक एक पुलिस अफ़सर की निरन्तर 30 वर्ष एक गुनहगार की तलाश पर आधारित है। लेखक की आशा है कि इसे पढ़ने के बाद पाठक कहे कि एक अच्छी पुस्तक की तलाश ख़त्म हुई और समीक्षक कहें कि एक अच्छे लेखक की तलाश ख़त्म हुई। हिन्दी में इस प्रकार का लेखन बहुत कम होता है। इस प्रकार के लेखन की परंपरा अंग्रेज़ी में बहुत है, प्रमोद देवगिरिकर भी प्रारंभ से अंग्रेज़ी में लिखते रहे हैं, तथा वहीं की परंपरा को अब हिन्दी में भी लेकर इस उपन्यास के माध्यम से आ रहे हैं।

000

शोध आलेख

प्रवासी हिन्दी कहानी और अप्रवासी मन की उलझन

शोध : डॉ. रौबी फौजदार

भारत जनसंख्या के मामले में विश्व में दूसरा स्थान रखता है,वहीं क्षेत्रफ़ल की दृष्टि से यह विश्व का सातवाँ देश है। यहाँ हर साल अनेक प्रतिभाएँ स्कूल कॉलेज से निकलकर रोज़गार के बेहतर विकल्प की तलाश में विदेशों का का रुख करती हैं तथा वहीं बस जाती हैं। उनमें वे व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने व्यक्तिगत कारणों, इच्छाओं से दूसरे देश में जाकर बसना पसन्द करते हैं, जबकि वहीं कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने ही देश से निर्वासित कर दिए गए हैं। उन्हें बार-बार अपनी जड़ों तथा अपने घर की याद सताती है। कृष्ण बिहारी की कहानी 'जड़ों से कटने पर' में पात्र कहता है- "बार-बार बेतुका ख्याल भरता कि हिन्दुस्तान में यदि कत्ल भी कर दिया होता, तो इतनी मानसिक यातना से गुज़रना नहीं पड़ता। झूठे आरोप पर परेशान होने का तो प्रश्न ही नहीं था। पहली बार एहसास हुआ कि अपने देश के अन्दर आदमी की अपनी और जड़ों की जो ताक़त होती है,वह दूसरे देश में कोई औक़ात नहीं रखती।"1

अजनबीपन और पहचान की कसक उन्हें भारत से जोड़े रखती है, लेकिन यहाँ भीपरिस्थितियाँ वैसी नहीं रह गयी होती हैं। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'बहता पानी' में पात्र कहता है- "मालूम था उसे कि इस बार कुछ बदला हुआ ज़रूर होगा। मायका होगा, माँ नहीं होगी। पीहर होगा,पिता नहीं होंगे। भाई के घर जा रही है। भाभी होगी, भतीजी ससुराल में होगी। कैसा लगेगा।"2 पहचान से अधिक पहचाने जाने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया को समझना ज़्यादा ज़रूरी है। पहचान की प्रक्रिया का अर्थ है कि आप एक निश्चित तरीके से बुलाए जाएँगे। जब उन्हें परायेपन तथा अपनी पहचान के दर्द से गुज़रना पड़ता है, तो उनका अन्त:करण चीख उठता है। उनकी आत्मा बेचैन हो उठती है। जैसा उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'एक काली तस्वीर' में आता है- "बीच में कौन था। मुझे लगा मैं हूँ क्या ? मैं अपनी संतान को संग्रहालयों, मंदिरोंऔर पुस्तकालयों में ले जाकर भारतीय संस्कृति की तस्वीरों वाली किताबें दिखाकर या कुर्ता पहनाकर भारत से जोड़े रखता हूँ।"3 इन सीमाओं में बँधा व्यक्ति फिर-फिर अपनी यादों में डुबकी लगाता रहता है। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'बहता पानी' में भी यही होता है –"जब पति, बच्चे, काम के संबंधों के साथ एक नए देश और संस्कृति के साथ जूझते हुए पस्त हो जाओ तो क्या तब भी इच्छा न हो, अपने उसी सुखद अनुभव में फिर से गोता लगाने की।"4 यह झूठ उसे मुक्ति तो नहीं देता पर उसे कुछ समय के लिए तसल्ली अवश्य प्रदान करता है।

प्रवास व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान को परिवर्तित कर देता है। यहाँ पहली और दूसरी पीढ़ी के प्रवासियों की पहचान में भी बहुत फर्क है। पहली पीढ़ी अधिकांशत: अतीत मोह से जकड़ी रहती है। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'बहता पानी' में भी ऐसा ही हो रहा है- "तुम लोग जो बाहर से आते हो न, पुरानी बातें बहुत करते हो, बस उसी समय के ताने-बाने में बँध जाते हो कि सब कुछ तुम्हारे हिसाब से वहीं रुका, थमा खड़ा होगा।"5 वहीं दूसरी पीढ़ी प्रश्नाकुल और आशावादी है, जैसे सुषम बेदी की कहानी 'तलाश' में दिखाई देता है–"कल को अगर नहीं निभी तो क्या कोई हमेशा के लिए दरवाज़े थोड़े बन्द हो गए -अलग हो जाएँगे, कोई और टकरा

डॉ.रौबी फौजदार
अकादमिक काउन्सलर
इग्नू अध्ययन केन्द्र (2713)
एएमयू, अलीगढ़-202002
मोबाइल- 9634985361
ईमेल- raubifaujdar@gmail.com

जाएगा।"6 रुकने का अर्थ जीवन का अंत है। पश्चिमी संस्कृति में भौतिकतावादी है, भावनात्मकता के लिए वहाँ कम ही जगह है। वह हमेशा बदलाव की माँग करती है। जो इस बदलाव में ढल जाता है, वह इस संस्कृति का धीरे -धीरे हिस्सा बन जाता है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'तुम्हारी आइशा' में जैसा दिखाई देता है -"तब मेरा नाम आशा था, जो अब आइशा या आयशा हो गया है। वही आशा, जिसे कभी लगता था कि लोग कितने नादान और कृतघ्न हैं, जो यहाँ आकर अपने माँ-बाप का दिया हुआ नाम तक बदल लेते हैं। लगता तो आज भी है, पर कहीं, धीरे-धीरे न जाने कैसे ज़रूरतें बदलती जाती हैं और आदमी पारे की तरह स्थितियों में ढलता चला जाता है। तब सब जायज़ लगने लगता है।"7

कहाँ तक व्यक्ति अपने आप को बचाएगा क्योंकि जब परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं, तो जीवन में सामंजस्य बिठाना ही पड़ता है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'टॉरनेडो' में पात्र कहता है- "जब जीवन में कोई विकल्प न रहे तो परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए।"8 पराये देश में तालमेल बैठाने में ही व्यक्ति को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

भारत से हर वर्ष हज़ारों व्यक्ति वैध अथवा अवैध तरीके से प्रवासी बन जाते हैं। जो वैध हैं वह अपनी पहचान के लिए प्रयासरत रहते हैं और जो अवैध तरीके से प्रवेश पा जाते हैं वह आजीविका के साथ-साथ अपनी पहचान पाने के लिए परेशान रहते हैं। पुलिस भी इन्हें बार - बार परेशान करती है। अचला नागर की कहानी 'बेघर' में भी यही होता है- "पुलिस वाले ने पल -भर उसे गौर से देखा,मानों उसे तौल रहा हो। फिर बोला –अपनी औक़ात में रह। वरना ... चला जा, जहाँ से आया है।"9 यह समस्या सिर्फ़ प्रवासी लोगों की ही नहीं है, अपितु उन स्त्रियों की भी है जो यहाँ से शादी करके विदेश में रहती हैं। वहाँ उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। उन्हें बेबसकर बेसहारा तथा बेघर कर दिया जाता है। जैसा ऐसे में 'वसुधा क्या करे', ऊषा वर्मा की कहानी में होता है-"सौरभ के कई ई-मेल आए थे, वसुधा ने मुझे बताया कि सौरभ कहता है कि मुझे मेरा सिमकार्ड वापस कर दो। चार दिन बाद सौरभ फिर आया। मैंने उसे आड़े हाथों लिया, पूछा,"क्या यह सच है।" बोला "हाँ मैंने उस लड़की से शादी नहीं की, पर मैं उसे प्यार करता हूँ।" तो क्या बीस हज़ार पाउंड सिमकार्ड की कीमत है ?"10 पराये देश में बेघर ये महिलाएँ कहाँ जाएँ ? अपने देश में पुलिस, परिवार तथा अपनों का सहारा ले सकती हैं लेकिन पराये देश और पराये लोगों का क्या भरोसा किया जाए।

सबसे बड़ी समस्या ऐसे रिश्ते से पैदा हुई संतान के सामने आती है, वह 'आसमान से टपके खजूर में अटके' वाली स्थिति में पहुँच जाते हैं। 'आधी पीली आधी हरी', गौतम सचदेव की कहानी में ऐसा ही होता है –"मैं फिर उलझ गई। मुझे न तो पा में कोई दोष दिखाई देता था, न मम्मी में। मुझे दोनों से बेहद लगाव भी था....लेकिन उन्होंने जिस शून्य में मुझे डाल दिया था, उसके लिए कौन दोषी था? मैंने खुद से सवाल किया,'जैसे उन्होंने नए जीवनसाथी चुने हैं,अगर मैं अपने लिए नए माता-पिता चुन लूँ।"11 बड़े तो अपने जीवन में रम जाते हैं पर बच्चे के मन पर पड़े घाव ताउम्र सालते रहते हैं। जिसकी वजह से यह बच्चे अपराध की तरफ मुड़ जाते हैं, जैसा 'मन की साँकल' कहानी में ज़किया जुबैरी लिखती हैं–"कहीं समीर गुस्से में उसकी हत्या कर देगा ?... नहीं...नहीं...यह नहीं हो सकता आखिर पुत्र है। भला ऐसा कैसे कर सकता है। मगर दिल का डर उसे सोने नहीं दे रहा। बिस्तर पर करवट बदल रही है...एकाएक बिस्तर से उठती है सीमा और भीतर के कमरे की साँकल चढ़ा देती है।"12 संबंधों में यह शक उन्हें खत्म कर देता है। रिश्ते जीवन की ऊर्जा होते हैं। जब इस ऊर्जा का स्थान स्वार्थ बन जाता है, तो माँ-बच्चों के प्यार में भी दूरियाँ आ जाती हैं। माँ अपनी औलाद को बिलखता छोड़ देती है। जिस प्रकार 'ऐसा क्यों' कहानी में नीना पॉल लिखती हैं–"वरोनिका, देखो मम्मी मुझे छोड़कर चली गईं।"13 भारतीय संस्कृति में रिश्तों की गरिमा काफी मायने रखती है। यहाँ रिश्तों के दबाव से आदमी अनेक अनैतिक कार्य करने से बच जाता है। जबकि यूरोपीय संस्कृति खुलेपन की पैरोकार तथा हस्तक्षेप की पाबन्दी का खयाल रखने वाली है। प्रवासी हिन्दी कहानी अप्रवासी मन को परत दर परत उघाड़ती चलती है।

000

संदर्भ- 1- जड़ों से कटने पर- कृष्ण बिहारी, पृष्ठ -119, हिन्दी प्रवासी साहित्य, संपादक- कमल किशोर गोयनका 2- बहता पानी- अनिल प्रभा कुमार, पृष्ठ -18 ,वही। 3-एक काली तस्वीर- उमेश अग्निहोत्री, पृष्ठ- 28, वही। 4- बहता पानी- अनिल प्रभा कुमार, पृष्ठ -18, वही। 5- वही, पृष्ठ-4। 6- तलाश- सुषम बेदी,पृष्ठ-104, वही। 7- तुम्हारी आइशा- सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पृष्ठ- 80, वही। 8- टॉरनेडो- सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ-94, वही। 9- बेघर- अचला शर्मा, पृष्ठ- 131, वही। 10- ऐसे में वसुधा क्या करे- ऊषा वर्मा,पृष्ठ– 151, वही। 11- आधी पीली आधी हरी- गौतम सचदेव, पृष्ठ- 166, वही। 12- मन की साँकल- ज़किया जुबैरी, पृष्ठ- 183,वही। 13- ऐसा क्यों- नीना पॉल,पृष्ठ- 221,वही।

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

स्ट्रॉबेरी एंटरटेनमेंट क्रिएशंस, शिवना क्रिएशंस तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन प्रस्तुत करते हैं

कौन सी ज़मीन अपनी

तुम लोग

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● April-June 2022 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

SHIVNA CREATIONS

शिवना क्रिएशंस, स्ट्रॉबेरी एंटरटेनमेंट क्रिएशंस तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन इंडिया-अमेरिका की प्रस्तुति

https://youtu.be/-88ScqJBUXg

हमारी जान हिन्दुस्तान

Director **Irfan Khan** Lyrics, Concept **Pankaj Subeer** Producer **Shaharyar Amjad Khan**
Music **Ram Shankar Jajware** Singer **Nazim Ali** DOP **Sanket Kakad** Editing, DI & Colourist **Nilesh Mulye**
Executive Producer **Sunil Bhalerao** Line Producer **Athar Ali** PRO **Akash Mathur**
Sound Track Sonu Rao, **Sound Engineer** Jeon Singh, **Song Recording** A. B. Studio Mumbai
Assistant Director Ejaz Dar, Gaurav Kumar, **Camera Attendant** Raman Verma, **Art & Costume Director** Dinesh Kumar, **Light Equipment** A. B. Cine Lights, **Makeup** Mohammad Irfan, **Transport** Hind Traders
Special Thanks- Shri Mayank Awasthi (IPS) SP, Shri Sameer Yadav ASP, Sushri Kavita RI & Sehore Police

Featuring- Mayank Awasthi, Sameer Yadav, Akhilesh Rai, Anil Paliwal, Kailash Agrawal, Mahendra Singh Khanuja, Umesh Sharma, Sunil Bhalerao, Hitendra Goswami, Pankaj Subeer, Shaharyar Amjad Khan, Rajnandini Purohit, Sachin Purohit, Pankhuri Purohit, Sunny Goswamy, Sunil Perwal, Shivam Goswami, Shivansh Bhalerao, Jitendra Rathore, Gaurav Kumar, Tahir Khan, Dinesh Kumar, Raman Verma, Ejaz Dar, Vansh Kumar, Sameer Dainy, Abid Shaikh "Chhotu Dada", Siddiq Khan, Javed Khan, Irshad Khan, Salman Khan, Rais Khan, Imran Khan, Master Om, Sehore Police - Shashikant Sharma, Arun Patel, Ashok Yadav, Jitendra Singh, Vinay Singh, Lokesh Singh, Pradeep Singh, Chandrbhan singh, Vipin Singh, Rahul Suryvanshi

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।